सन्मतितर्क

अनुक्रमणिका

नयमीमांसा

1-01) जिन-शासन : स्वतः प्रमाण-सिद्ध है
1-02) यह रचना मन्द-बुद्धि वालों के लिए
1-03) तीर्थंकर-वाणी : सामान्य-विशेषात्मक
1-04) संग्रहनय की सत्ता
1-05) पर्यायार्थिकनय का मूल
1-06) निक्षेप -- लोक व्यवहार
1-07) दोनों नयों का विषय
1-08) नय : एक-दूसरे से अतिक्रान्त
1-09) कोई नय शुद्ध जाति वाला नहीं
1-10) दोनों नय परस्पर विरुद्ध
1-12) द्रव्य का लक्षण
1-13) दोनों नय : असत्य दृष्टि ?
1-14) नयों की यथार्थता
1-16) कोई भी नय उभयवाद का प्रतिपादक नहीं
1-17-021) दोनों नयों की एकान्त दृष्टि में संसार / मोक्ष नहीं
1-22-025) समन्वित ही सुनय
1-26) दृष्टान्त की सार्थकता
1-27) सापेक्षता न हो तो मिथ्यात्व (विपरीतता)
1-28) अपनी मर्यादा में सभी नय सच्चे
1-29) दोनों नयों की विषय-मर्यादा
1-30) व्यंजन पर्याय भिन्न तथा अभिन्न
1-31) द्रव्य कितना ?
1-32) व्यंजनपर्याय : सदृशपर्यायप्रवाह
1-34) एक द्रव्य में दोनों पर्यायें (अवस्थायें)
1-35) सविकल्प या निर्विकल्प मानना अनिश्चितता
1-36-040) सात भंग
1-41) अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय में भंग
1-42) केवल पर्यायार्थिकनय का वक्तव्य पूर्ण नहीं
1-44-046) वस्तु एक है और अनेक भी
1-47-048) दूध और जल के समान जीव और शरीर भिन्न-अभिन्न
1-49) आत्मा और मन, वचन, काय का एकत्व
1-50) बाह्याभ्यन्तर व्यवस्था की विशिष्टता
1-51-052) दोनों नयों की मान्यता
1-53) समन्वय में जैनदृष्टि
1-54) वक्ता किसी एक नय से कथन करे

ज्ञानमीमांसा

2-01) दर्शन और ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं
2-02) दर्शन तथा ज्ञान काल में भेद
2-03) केवलज्ञान में ज्ञान, दर्शन का काल भिन्न नहीं
2-04) कुछ आचार्यों का भिन्न मत
2-05-08) केवली के ज्ञान-दर्शन में काल-भेद नहीं
2-09) केवली के एक ही उपयोग
2-10-14) सर्वज्ञ सामान्य-विशेष रूप पदार्थों का ज्ञाता
2-15) क्रमोपयोगवादी का कथन

2-16-17) ज्ञान का विषय पदार्थ
2-18) सामर्थ्य के अनुसार सूत्रों की व्याख्या
2-19) मन:पर्यय ज्ञान ही है दर्शन नहीं
2-20) केवलदर्शन, केवलज्ञान कहने का तात्पर्य
2-21-22) केवलदर्शन और केवलज्ञान में अन्तर क्या ?
2-23-24) मतिज्ञान ही दर्शन
2-25) आगम में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन क्यों?
2-26) मन:पर्यय ज्ञान में मन:पर्यय दर्शन का प्रसंग नहीं
2-27) अल्पज्ञ का पदार्थ-ज्ञान दर्शनपूर्वक
2-28) श्रुतज्ञान में दर्शन शब्द लागू नहीं
2-29) अवधिज्ञान में दर्शन शब्द का प्रयोग उपयुक्त
2-30) केवली के भेदविहीन ज्ञान, दर्शन
2-31) युगपत् अनन्तदर्शन ज्ञानयुक्त स्वसमय
2-32-33) तत्त्व-रुचि रूप श्रद्धान सम्यग्दर्शन
2-34-36) एक बार होने पर केवलज्ञान सतत
2-37-42) परस्पर विरुद्धता होने पर केवलज्ञान कैसे ?
2-43) केवलज्ञान : असंख्यात और अनन्त भी

ज्ञेयमीमांसा

3-01-02) सामान्य और विशेष में भेद नहीं
3-03-04) सामान्य का समन्वयकारी प्रतीत्यवचन
3-05-06) वस्तु में अस्तित्व ओर नास्तित्व दोनों
3-07) एक ही पुरुष में भेदाभेद
3-08) क्या द्रव्य और गुण में भेद है?
3-09-15) गुण पर्याय-संज्ञा है क्या ?
3-16-18) अभेदवादी का कथन
3-19) सर्वथा अभेद-पक्ष निर्दोष नहीं
3-20) अभेदवादी का कथन
3-21) सिद्धान्ती का तर्क
3-22) प्रश्नोत्तर
3-23-24) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण-विचार
3-25-26) प्रस्तुत वार्ता का प्रयोजन
3-35-37) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भिन्न तथा अभिन्न भी
3-43-45) धर्मवाद
3-46-49) शुद्ध नयवाद
3-50-52) वे सभी सदोष
3-53) कार्य की उत्पत्ति स्व-कारण से
3-54-55) अनात्मवादी और आत्मवादी
3-56-59) अनेकान्त-दृष्टि के अभाव में
3-60) पदार्थ के प्रतिपादन का क्रम
3-61-62) अनेकान्ती ही भावस्पर्शी
3-63) भक्ति या जानकारी मात्र से ज्ञानी नहीं
3-64-65) अर्थ-ज्ञान दुर्लभ है
3-66-67) ज्ञान-विहीन पर-समय

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
आचार्य सिद्धसेन-देव-विरचित
श्री
सन्मतितर्क
मूल प्राकृत सूत्र
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीसन्मतितर्क नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तार: श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तार: श्रीगणधरदेवा: प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीसिद्धसेनदेव विरचितं, श्रोतार: सावधानतया श्रृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

जिन-शासन : स्वतः प्रमाण-सिद्ध है

सिद्धं सिद्धत्थाणं ठाणमणोवमसुहं उवगयाणं ।
कुसमयविसासणं सासणं जिणाणं भवजिणाणं ॥1॥

अन्वयार्थ : [अणोवम] अनुपम [सुहं] सुख (के) [ठाणं] स्थान को [उब] गयाणं] प्राप्त (तथा) [भवजिणाणं] संसार को जीतने वाले [जिणाणं] जिनेन्द्र भगवान का [सासणं] शासन [सिद्धत्याणं] (प्रमाण) प्रसिद्ध अर्थों का [ठाणं] स्थान है और [कुसमय] मिथ्या मत (का) [विसासणं] निवारण करने वाला [सिद्धं] (स्वत:) सिद्ध है ।

यह रचना मन्द-बुद्धि वालों के लिए

समयपरमत्थवित्थरविहाडजणपज्जुवासणसयन्नो।
आगममलारहियओ जह होइ तमत्थमुन्नेसुं ॥2॥

अन्वयार्थ : [आगममलारहियओ] आगम (समझने में) मन्द बुद्धि वालों के लिए यह ग्रन्थ [समयपरमत्थवित्थर] सिद्धान्त (के) परमार्थ (सत्यार्थ) विस्तार (को) [विहाड] प्रकट(प्रकाशित करने वाला है) [जण] लोग [पज्जुवासण] पर्युपासना (भमलीभांति उपासना में) [सयण्ण] सावधान [जह] जैसे (जिस तरह से) [होइ] हो (जायें) (वैसे ही) [तमत्थ मुण्णेसु] उस अर्थ को कहूँगा ।

तीर्थंकर-वाणी : सामान्य-विशेषात्मक

तित्थयरवयणसंगह-विसेसपत्थारमूलवागरणी ।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पा सिं ॥3॥

अन्वयार्थ : [तित्थयरवयण] तीर्थंकर (के) वचन (वचनों का) [संगह] संग्रह (सामान्य और) [विसेस पत्थार] विशेष प्रस्तार (के) [मूलवागरणी] मूल व्याख्याता [दव्वट्ठियो] द्रव्यार्थिक(नय) [य]और [पज्जवणयो] पर्यायार्थिक नय (मूल में दो नय हैं) [य] और [सेसा] शेष (नय) [सिं] उन (दोनों नयों के) [वियप्पा] विकल्प (भेद) हैं ।

संग्रहनय की सत्ता

दव्वट्ठियनयपयडी सुद्धा संगहपरूवणाविसओ ।
पडिरूवे पुण वयणत्थनिच्छओ तस्स ववहारो ॥४॥

अन्वयार्थ : [संगहपरूवणाविसओ] संग्रह (नय की) प्ररूपणा (का) विषय [सुद्धा] शुद्ध [दव्वट्ठियणयपयडी] द्रव्यार्थिक नय (की) प्रकृति है [पडिरूवे] प्रतिरूप में (प्रत्येक वस्तु-रूप में) [पुण] फिर [वयणत्थ] वचन के अर्थ का [णिच्छोओ] निश्चय [तस्स] उस (संग्रह नय) का [ववहारो] व्यवहार है ।

पर्यायार्थिकनय का मूल

मूलणिमेणं पज्जवणयस्स उज्जुसुयवयणविच्छेदो ।
तस्स उ सहाईआ साहपसाहा सुहुमभेया ॥5॥

अन्वयार्थ : [उज्जुसुयवयणविच्छेदो] ऋजुसूत्रनय (का) वचन-व्यवहार (ही) [पज्जवणयस्स] पर्यायार्थिक नय का [मूलणिमेणं] मूल स्थान (है) [सद्दाईआ] शब्दादिक (शब्दनय, समभिरूढ़नय, एवंभूतनय) [उ तस्य] तो उस (ऋजुसूत्रनय) के [साहपसाहा] शाखा-प्रशाखा (रूप) [सुहुमभेया] सूक्ष्म भेद हैं ।

निक्षेप -- लोक व्यवहार

नामं ठवणा दविए त्ति एस दव्वट्ठियस्स निक्खेवो ।
भावो उ पज्जवट्ठिअस्स परूवणा एस परमत्थो ॥6॥

अन्वयार्थ : [णामं ठवणा दविए] नाम स्थापना द्रव्य (निक्षेप) [त्ति] इस प्रकार [एस] यह (तीनों निक्षेप) [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) के [णिक्खेवो] निक्षेप हैं [उ भावो] किन्तु भाव (निक्षेप) [पज्जवड्डियस्स] पर्यायार्थिक (नय) की [परूवणा] प्ररूपणा (कथनी) (होने से) [एस] यह [परमत्थो] परमार्थ है ।

दोनों नयों का विषय

पज्जवणिस्सामण्णं वयणं दव्वट्ठियस्स 'अत्थि' त्ति ।
अवसेसो वयणविही पज्जवभयणा सपडिवक्खो ॥7॥

अन्वयार्थ : [अत्थि] है (सत्) [त्ति] यह (वचन) [पज्जवणिस्सामण्णं] पर्याय (से) रहित सामान्य (विशेष से सर्वथा रहित) [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) का [ववण] वचन (विषय है) [पज्जवभयणा] पर्याय (के) विभाग से [अवसेसो] बाकी सब [वयणविही] वचनविधि (कथन-प्रकार) [सपडिवक्खो] प्रतिपक्षी (सापेक्ष / प्रतिपक्ष सहित) है ।

नय : एक-दूसरे से अतिक्रान्त

पज्जवणयवोक्कंतं वत्थुं दव्वट्ठियस्स वयणिज्जं ।
जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्प-निव्वयणो ॥8॥

अन्वयार्थ : [जाव] जब तक [अपच्छिमवियप्पणिव्वयणो] अन्तिम विकल्प (और) वचन-व्यवहार (रूप) [दविओवओगो] द्रव्योपयोग (है) (ताव) तब तक [पज्जवणयवोक्कंतं] पर्यायार्थिकनय से अतिक्रान्त [वत्थुं] वस्तु को [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) की [वयणिज्जं] वाच्य जानो ।

कोई नय शुद्ध जाति वाला नहीं

दव्वट्ठिओ त्ति तम्हा नत्थि णओ णियम सुद्धजाईओ ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोइ भयणाय उ विसेसो ॥9॥

अन्वयार्थ : [तम्हा] इसलिए [णियमसुद्धजाईओ] नियम से शुद्ध जातीय [दव्वट्ठियो] द्रव्यार्थिक [णयो] नय [णत्थि] नहीं है [त्ति] इसी प्रकार कोई [पज्जवट्ठियो] पर्यायार्थिक [णाम] नाम (नहीं है) [उ] किन्तु [विसेसो] विशेष (विवक्षा) [भयणाय] विभाग (करने) के लिए है ।

दोनों नय परस्पर विरुद्ध

दव्वट्ठियवत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स ।
तह पज्जववत्थु अवत्थुमेव दवट्ठियनयस्स ॥१०॥

अन्वयार्थ : [दव्वट्ठियवत्तव्वं] द्रव्यार्थिक (नय का) वक्तव्य [पज्जवणयस्स] पर्यावार्थिक नय के (लिए) [णियमेण] नियम से [अवत्थु] अवस्तु (है) [तह] उसी प्रकार (से) [दव्वट्ठियणयस्स] द्रव्यार्थिक नय के (लिए) [पज्जववत्थु] पर्यायार्थिक (की) वस्तु [अवत्युमेव] अवस्तु ही है ।

उप्पज्जंति वियंति य भावा नियमेण पज्जवणयस्स ।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सया अणुप्पन्नमविणट्ठं ॥11॥

अन्वयार्थ : [पज्जवणयस्स] पर्यायार्थिक नय की (दृष्टि में) [भावा] पदार्थ [णियमेण] नियम से [उप्पज्जंति] उत्पन्न होते हैं [वियंति] नष्ट होते हैं [य] और [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) की (दृष्टि में) [सया] सदा [सव्वं] सभी (पदार्थ) [अणुष्पण्णमविणट्ठं] न उत्पन्न होते न नष्ट होते हैं ।

द्रव्य का लक्षण

दव्वं पज्जवविउयं, दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि ।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा, हंदि दवियलक्खणं एयं ॥12॥

अन्वयार्थ : [पज्जवविउयं] पर्याय (से) रहित [दव्वं] द्रव्य [य] और [दव्वविउत्ता] द्रव्य से अलग [पज्जवा] पर्याय [णत्थि] नहीं (है) [उप्पायट्ठिइभंगा] उत्पाद, स्थिति (और) व्यय (से युक्त वस्तु) के कथन (प्रकार) से [हंदि] निश्चय से [एयं] यह [दवियलक्खणं] द्रव्य का लक्षण है ।

दोनों नय : असत्य दृष्टि ?

एए पुण संगहओ पाडिक्कमलक्खणं दुवेण्हं पि ।
तम्हा मिच्छद्दिट्ठी पत्तेयं दो वि मूलणया ॥13॥

अन्वयार्थ : [एए] ये [पुण] फिर [संगहओ] संग्रह (परस्पर अभिन्न) नय से [दुर्वेण्हं] दोनों [पि] भी [पाडिक्कमलक्खणं] प्रत्येक अलक्षण (लक्षण वाले नहीं हैं) [तम्हा] इसलिए [पत्तेयं] प्रत्येक [दो] दोनां [वि] ही [मूलणया] मूल नय [मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि हैं ।

नयों की यथार्थता

ण य तइयो अस्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं ।
जेण दुवे एगन्ता विभजमाणा अणेगन्तो ॥14॥

अन्वयार्थ : [य] और [तइओ] तीसरा [णयो] नय [ण] नहीं [अत्यि] है [य] और [तेसु] उनमें (उन दोनों नयों में) [पडिपुण्णं] परिपूर्ण [सम्मत्तं] सम्यक्त्व (यथार्थपना) [णयं] नय [ण] नहीं है (ऐसा) [ण] नहीं है [जेण] जिससे [दुवे] दोनों [एंगता] एकान्त (नय) [विभज्जमाणा] भजमान (परस्पर सापेक्ष कथन करने पर) [अणेगंतो] अनेकान्त कहे जाते हैं ।

जह एए तह अण्णे पत्तेयं दुण्णया णया सव्वे ।

हंदि हु मुलणयाणं पण्णवणे वावडा ते वि ॥15॥

अन्वयार्थ : [जह] जिस तरह [एए] ये (दोनों नय निरपेक्ष होने पर) [दुण्णया] दुर्नय (मिथ्या नय) (हैं) [तह] उसी तरह [अण्णे] दूसरे [सव्वे] सब [पत्तेयं] प्रत्येक [णया] नय (मिथ्या कहलाते हैं) (क्योंकि) [हु] सचमुच [मूलणयाणं] मूल नयों की [पण्णवणे] प्रज्ञापना (विषय के प्रतिपक्ष) में [ते वि] वे भी (अन्य नय भी सापेक्ष होकर) [वावडा] संलग्न [होंति] होते हैं ।

कोई भी नय उभयवाद का प्रतिपादक नहीं

सव्वणयसमूहम्मि वि णत्थि णओ उभयवायपण्णवओ ।

मूलणयाण उ आणं पत्तेयं विसेसियं बिंति ॥16॥

अन्वयार्थ : [सव्वणयसमूहम्मि] सब नयों (के) समूह में [वि] भी [उभयवायपण्णवओ] उभयवाद (का) प्रतिपादक [णयो] नय [णत्थि] नहीं है [उ] किन्तु [मूलणयाण] मूल नयों (के) द्वारा [णाअं] जाने (विषय को) [विसेसियं] विशेष (रूप से) [पत्तेयं] प्रत्येक (नय) [बेंति] कहते हैं ।

दोनों नयों की एकान्त दृष्टि में संसार / मोक्ष नहीं

ण य दव्वट्ठियपक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स ।

सासयवियत्तिवायी जम्हा उच्छेअवाईआ ॥17॥

सुह-दुक्खसम्पओगो ण जुज्जए णिच्चवायपक्खम्मि ।

एगंतुच्छेयम्मि य सुह-दुक्खवियप्पणमजुत्तं ॥18॥

कम्मं जोगनिमित्तं बज्झइ बन्धट्ठिई कसायवसा ।

अपरिणरउच्छिण्णेसु य बंघट्ठिइकारणं णत्थि ॥19॥

बंधम्मि अपूरन्ते संसारभओघदंसणं मोज्झं ।

बन्धं व विणा मोक्खसुहपत्थणा णत्थि मोक्खो य ॥20॥

तम्हा सव्वे वि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।

अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥21॥

अन्वयार्थ : [दव्वट्टियपक्खे] द्रव्यार्थिक (नय के) पक्ष (मत) में [संसारो] संसार [ण] नहीं है [य] और [पज्जवणयस्स] पर्यायार्थिक नय के (पक्ष में भी संसार) [णेव] नहीं (है) [जम्हा] जिस कारण (क्योंकि) (द्रव्यार्थिक नय) [सासयवियत्तिवाई] शाश्वत (नित्य) व्यक्तिवादी (है) [य] और (दूसरा) [उच्छेयवाई] उच्छेदवादी (नाशवादी) है ।

[णिच्चवायपक्खम्मि] नित्यवाद पक्ष में [सुहदुक्खसंपओगो] सुख-दुःख (का) सम्बन्ध [ण] नहीं [जुज्जए] जोड़ा जा सकता (है) [य] और [एगंतुच्छेयम्मि] एकान्त (के) उच्छेद (क्षणिकवाद) में (भी) [सुहदुक्खवियप्पणमजुत्तं] सुख-दुःख (का) विकल्प करना अयुक्त (नहीं बनता) है ।

[जोगणिमित्तं] योग (मन, वचन और शरीर के व्यापार से आत्मप्रदेशों में स्थित शक्ति विशेष से होने वाले परिस्पन्दन) निमित्त (साधन) से [कम्मं] कर्म [बज्झइ] ग्रहण (किया जाता है) [कसायवसा] कषाय (क्रोध, अहंकार, माया और लोभ) के अधीन (सामर्थ्य) से [बंधट्ठिई] बन्ध (की) स्थिति (निर्मित होती हैं) [अपरिणउक्किण्णेसु] उपशान्त कषाय तथा क्षीणकषाय दानों में सर्वथा नित्य-अनित्य अवस्था में [य] और [बंधट्ठिई] बन्धस्थिति (का); कारण (निमित्ते) [णत्थि] नहीं है ।

[बंधम्मि] बन्ध (की) में [अपूरंते] पूर्ति हुए (बिना) [संसारभओघदंसणं] संसार (में) भय-समूह (विविधता का) दर्शन [मोज्झ] व्यर्थ है [बंधं] बन्ध के [व] ही [विणा] बिना [मोक्खसुहपत्थणा] मोक्षसुख की प्रार्थना (अभिलाषा) [य] और [मोकेंखो] मोक्ष [णत्थि] नहीं है ।

[तम्हा] इसलिए [सव्वे] सब [वि] ही [णया] नय [सपक्खपडिबद्धा] अपने (अपने) पक्ष (एकान्त में) संलग्न [मिच्छादिट्ठी] मिथ्या रूप हैं [उण] फिर (वे ही) [अण्णोण्ण] एक-दूसरे (परस्पर) के [णिस्सिया] पक्षपाती (सापेक्ष) [सम्मत्तसब्भावा] सम्यक् रूप (वाले) [हवंति] होते हैं ।

समन्वित ही सुनय

जहऽणेयलक्खणगुणा वेरुलियाई मणी विसंजुत्ता ।
रयणावलिववएसं न लहंति महग्घमुल्ला वि ॥22॥
तह णिययवायसुविणिच्छिया वि अण्णोण्णपक्खणिरवेक्खा ।
सम्मद्दंसणसद्दं सव्वे वि णया ण पावेंति ॥23॥
जह पुण ते चेव मणी जहा गुणविसेसभागपडिबद्धा ।
'रयणावलि'त्ति भएणइ जहंति पाडिक्कसण्णाउ ॥24॥
तह सव्वे णयवाया जहाणुरूवविणिउत्तवत्तव्वा ।
सम्मद्दंसणसद्दं लहन्ति ण विसेससण्णाओ ॥25॥

अन्वयार्थ : [जह] जिस प्रकार [णेग] अनेक [लक्खणगुणा] लक्षण (और) गुण (वाले) [वेरुलियाई मणी] वैडूर्य मणि [महग्धमुल्ला] बहुत मूल्य (वाले) [वि] भी [विसंजुत्ता] बिखरे हुए (पिरोये हुए, संयुक्त नहीं होने से) [रयणावलिववएसं] रत्नावली नाम (व्यवहार को) [ण] नहीं [लहंति] प्राप्त (करते) हैं ।

[तह] उसी प्रकार [णिययवायसुविणिच्छिया] अपने (अपने) वाद (पक्ष में) सुनिश्चित (होने पर) [वि] भी [अण्णोण्णपक्खणिरवेक्खा] एक-दूसरे (के) पक्ष (के साथ) निरपेक्ष (होने से) [सव्वे] सब [वि] ही [णया] नय [सम्महंसणसइं] सम्यक्दर्शन शब्द को [ण] नहीं [पारवंति] पाते हैं ।

[जह पुण] जैसे फिर [ते चेव] वे ही [मणी जहागुणविसेसभाग पडिबद्धा] जहाँ (जब) धागे विशेष (में) पिरो दी जाती हैं तो [रयणावलि] रत्नावली (रत्नों का हार) [त्ति] यह [भण्णइ] कही जाती है (और) [पाडिक्कसण्णाओ] प्रत्येक (अपने-अपने) संज्ञा (नाम को, मणि इस नाम को) [जहति] छोड़ देती है ।

[तह] उसी प्रकार [सव्वे] सब [णयवाया] नयवाद [जहाणुरूवविणिउत्तवत्तव्वा] यथानुरूप वचनों (में) विनियुक्त (प्रकट होने वाले) [सम्मदंसणसद्दं] सम्यग्दर्शन शब्द(को) [लहंति] प्राप्त करते हैं [विसेससण्णाओ] विशेष संज्ञा(वाले हो कर) [ण] नहीं ।

दृष्टान्त की सार्थकता

लोइयपरिच्छयसुहो निच्छयवयणपडिवत्तिमग्गो य ।
अह पण्णवणाविसउ त्ति तेण वीसत्थमुवणीओ ॥26॥

अन्वयार्थ : [अह] और [पण्णवणाविसओ] प्रतिपादन का विषय (जो कहा जा रहा है) [वह) [लोइय] लौकिक (जन और) [परिच्छय] परीक्षक जन को [सुहो] सुख (ज्ञेय हो जाए) [य] और [णिच्छयवयणपडिवत्तिमग्गो] निश्चित ज्ञानमार्ग (के प्रतिपादक) वचन हैं [तेण] इसलिये [त्ति] यह [वीसत्थमुवणीओ] विश्वस्त करने वाला है ।

सापेक्षता न हो तो मिथ्यात्व (विपरीतता)

इहरा समूहसिद्धो परिणामकओ व्व जो जहिं अत्थो ।
ते तं च ण तं तं चेव व त्ति नियमेण मिच्छत्तं ॥27॥

अन्वयार्थ : [इहरा] अन्य प्रकार से (सापेक्षता न हो तो) [समूहसिद्धो] समुदाय (रूप में) प्रतिष्ठित (मत में) [परिणामकओ] परिणाम (रूप) कार्य (उत्पन्न होता है) [व्व] ही जो [जहिं] जिसमें (कारण में) [अत्थो] पदार्थ (सत् होता है) [ते] वह (कार्य) [तं] उस (कारण रूप है) [व] अथवा [ण] नहीं (है वह कार्य-कारण रूप) [च] और [तं] वह (कार्य) [तं] कारण (रूप) [चेव] ही है [त्ति] यह (मान्यता) [णियमेण] नियम से (सिद्धान्ततः) [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व (विपरीत) कहा जाता है ।

अपनी मर्यादा में सभी नय सच्चे

णिययवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा ।

ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा ॥28॥

अन्वयार्थ : [सव्वणया] सभी नय [णियय] अपने (अपने) [वयणिज्ज] वक्तव्य (में) [सच्चा] सच्चे हैं और [परवियालणे] दूसरे (के वक्तव्य का) निराकरण (करने) में [मोहा] व्यर्थ हैं [दिट्ठसमयो] सिद्धान्त (का) ज्ञाता [पुण] फिर [ते] उन (नयों का) [सच्चे] सत्य में (यह सच्चा है) [व] अथवा [अलिए] झूठ में (यह झूठा है) ऐसा [ण] नहीं [विभयइ] विभाग करता ।

दोनों नयों की विषय-मर्यादा

दव्वट्ठियवत्तव्वं सव्वं सव्वेण णिच्चमवियप्पं ।

आरद्धो य विभागो पज्जववत्तव्वमग्गो य ॥29॥

अन्वयार्थ : [सव्वं] सब [सव्वेण] सब तरह से [णिच्चमवियप्पं] नित्य (और) अविकल्प (भेदरहित) [दव्वट्ठियवत्तव्वं] द्रव्यार्थिक (नय का) वक्तव्य है [य] और [विभागो] भेद के [आरद्धो] आरम्भ (होते ही) [पज्जववत्तव्वमग्गो] पर्याय (आर्थिक नय के) वक्तव्य का मार्ग (बन जाता) है।

व्यंजन पर्याय भिन्न तथा अभिन्न

जो उण समासओ च्चिय वंजणणिअओ य अत्थणिअओ य ।

अत्थगओ य अभिण्णो भइयव्वो वंजणवियप्पो ॥30॥

अन्वयार्थ : जो [पुण] फिर [समासओ] संक्षेप (में) [च्चिय] ही [वंजणणियओ] व्यंजननियत (शब्दसापेक्ष) [य] और [अत्थणियओ] अर्थ-नियत (अर्थसापेक्ष) हैं [य] और [अत्थगओ] अर्थगत (विभाग) [अभिण्णे] अभिन्न हैं [य] और [वंजणवियप्पो] व्यंजन-विकल्प [भइयव्वो] भाज्य (भिन्न तथा अभिन्न) हैं ।

द्रव्य कितना ?

एगदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वावि ।

तीयाणागयभूया तावइयं तं हवइ दव्वं ॥31॥

अन्वयार्थ : [एगदवियम्मि] एक द्रव्य में [जे] जो [तीयाणागयभूया] अतीत, भविष्य (और) वर्तमान (में) [अत्थपज्जया] अर्थपर्याय [वा] अथवा [वयणपज्जया] व्यंजनपर्याय [तं] वह [दव्वं] द्रव्य [तावइयं] उतना [इवइ] होता है ।

व्यंजनपर्याय : सदृशपर्यायप्रवाह

पुरिसम्मि पुरिससद्दो जम्माई मरणकालपज्जन्तो ।

तस्स उ बालाईया पन्जवजोया बहुवियप्पा ॥32॥

अन्वयार्थ : [जम्माई मरणकालपज्जंतो] जन्म से मरणकाल तक [पुरिसम्मि] पुरुष में [पुरिससद्दो] पुरुष शब्द (का व्यवहार होता है) [तस्स उ] उस (पुरुष) के तो [पज्जवजोगा] पर्याय (के) संयोगों से [बहुवियप्पा] अनेक विकल्प (अंश) होते हैं ।

अत्थि त्ति णिव्वियप्पं पुरिसं जो भणइ पुरिसकालम्मि ।

सो बालाइवियप्पं न लहइ तुल्लं व पावेज्जा ॥33॥

अन्वयार्थ : जो [पुरिसं] पुरुष को [पुरिसकालम्मि] पुरुषकाल (मनुष्यदशा) में [अत्थि] अस्ति (अस्ति रूप से है) [त्ति] यह (मानता है सो) [णिव्वियप्पं] निर्विकल्प (है) [सो] वह [बालाइवियप्पं] बाल (युवा आदि भेदों) आदि विकल्पों को [ण] नहीं [लहइ] पाता (मानता है) [तुल्लं] बराबर (दोनों को समान) [व] ही [पा्वेज्जा] पाता है (मानता है) ।

एक द्रव्य में दोनों पर्यायें (अवस्थायें)

वंजणपज्जायस्स उ 'पुरिसो' 'पुरिसो' त्ति णिच्चमवियप्पो ।

बालाइवियप्पं पुण पासई से अत्थपज्जाओ ॥34॥

अन्वयार्थ : [वंजणपज्जायस्स] व्यंजनपर्याय का (अनुगमन करने वाले को) [उ] तो [पुरिसो] पुरुष [पुरिसो] पुरुष [त्ति] यह (ऐसी) [णिच्चमवियप्पो] नित्य निर्विकल्प (भेदहीन प्रतीति होती है) [पुण] फिर [बालाइवियप्पं] बाल (युवा आदि भेदों) आदि विकल्पों को [पासइ] देखा जाता (है) [से] वह [अत्थपज्जाओ] अर्थपर्याय है ।

सविकल्प या निर्विकल्प मानना अनिश्चितता

सवियप्प-णिव्वियप्पं इय पुरिसं जो भणेज्ज अवियप्पं ।
सवियप्पमेव वा णिच्छएण ण स निच्छिओ समए ॥35॥

अन्वयार्थ : जो [सवियप्पणिव्वियप्पं] सविकल्प-निर्विकल्प (रूप द्रव्य है) [इय] इस कारण [पुरिसं] पुरुष को [अवियप्पं] निर्विकल्प (मात्र) [सवियप्पमेव] सविकल्प (मात्र) ही [वा] अथवा [भणेज्ज] कहता है [स] वह (मनुष्य) [समए] आगम (शास्त्र) में [ण] नहीं [णिच्छिओ] निश्चित (स्थिरबुद्धि) है ।

सात भंग

अत्थंतरभूएहि य णियएहि य दोहि समयमाईहिं ।
वयणविसेसाईयं दव्वमवत्तव्वयं पडइ ॥36॥
अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ ।
तं दवियमत्थि णत्थि य आएसविसेसियं जम्हा ॥37॥
सब्भावे आइट्ठो देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं अत्थि अवत्तव्वं च होइ दविअं वियप्पवसा ॥38॥
आइट्ठोऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं णत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा ॥39॥
सब्भावाऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं अत्थि णत्थि अवत्तव्वयं च दवियं वियप्पवसा ॥40॥

अन्वयार्थ : [अत्थंतरभूएहि] अर्थान्तरभूत (पद्व्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव) के द्वारा [य] और [णियएहि] निज (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव) के द्वारा [दोहि] दोनों के द्वारा [समयमाईहिं] एक साथ से (में) [वयणविसेसाईयं] वचन विशेष से अतीत (वचनों की पहुँच से बाहर) [द्रव्वं] द्रव्य (कही जाने वाली वस्तु) [अवत्तव्वं] अवक्तव्य [पडइ] पड़ती (कही जाती) है ।
[अह] और (जिसका) [देसो] भाग (एक देश) [सब्भावे] सद्भाव में (सार रूप में) (तथा) देसो] एक देश [असब्भावपज्जवे] असतूभाव (रूप) पर्याय में [णियओ] नियत (है) [तं] वह [दवियं] द्रव्य [अत्थि] अस्ति [णत्यि] नास्ति (रूप है) [जम्हा] क्योंकि [आएसविसेसियं] भेद (विवक्षा की) विशेषता है ।
[जस्स] जिसका [देसो] देश (एक भाग) [सब्भावे] सद्भाव (अस्तिरूप) से [य] और [देसो] देश (एक भाग) [उभयहा] उभय (रूप) से [आइट्ठो] विवक्षित (हो) [तं] वह [दवियं] द्रव्य [वियप्पवसा] विकल्प (भेद के) वश (कारण) [अत्थि अवत्तव्वं] अस्ति] अवक्तव्य है ।
[जस्स] जिसका [देसो] देश (एक भाग) [असब्भावे] असत् भाव में [आइट्ठो] कहा जाता (है) य] और [देसो] देश (एक भाग) [उभयहा] उभयरूप (दोनों तरह) से [तं] वह [दवियं] द्रव्य [वियप्पवसा] विकल्पवश [णत्थि अवत्तव्वं] नास्ति] अवक्तव्य [होइ] होता है ।
[जस्स] जिसका [देसो] देश (एक भाग) [सब्भावासब्भावे] सद्भाव-असद्भाव (सदसत्रूप से) में [य] और [देसो] देश (एक भाग) [उभयहा] दोनों रूप से (कहा जाता है) [तं] वह [दवियं] द्रव्य [वियप्पवसा] विकल्पवश से [अत्यि णत्यि च अवत्तव्वं] अस्ति] नास्ति और अवक्तव्य (बनता) है ।

अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय में भंग

एवं सत्तवियप्पो वयणपहो होइ अत्थपज्जाए ।

वंजणपज्जाए उण सवियप्पो णिव्वियप्पो य ॥41॥

अन्वयार्थ : [एवं] इस प्रकार [अत्थपज्जाए] अर्थपर्याय में [सत्तवियप्पो] सात विकल्प (रूप) [वयणपहो] वचनमार्ग [होइ] होता है [पुण] फिर [वंजणपज्जाए] व्यंजनपर्याय में [सवियप्पो] सविकल्प [य] और [णिव्वियप्पो] निर्विकल्प (रूप वचन मार्ग) होता है ।

केवल पर्यायार्थिकनय का वक्तव्य पूर्ण नहीं

जह दवियमप्पियं तं तहेव अस्थि त्ति पज्जवणयस्स ।

ण य स समयपन्नवणा पज्जवणयमेत्तपडिपुण्णा ॥42॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [दवियं] द्रव्य [अप्पियं] अर्पित (विवक्षित) [तं] वह [तहेव] वैसा ही [अत्थि] है [त्ति] यह (ऐसा) [पज्जवणयस्स] पर्यायार्थिकनय का (कथन है); (किन्तु) [पज्जवणयमेंत्त] पर्यायार्थिकनय मात्र [पड़िपुण्णा] परिपूर्ण [ससमयपण्णवणा] स्वसमय (आत्मतत्त्व की) प्ररूपणा [ण] नहीं (है) ।

पडिपुण्णजोव्वणगुणो जह लज्जइ बालभावचरिएण ।

कुणइ य गुणपणिहाणं अणागयसुहोवहाणत्थं ॥43॥

वस्तु एक है और अनेक भी

ण य होइ जोव्वणत्थो बालो अण्णो वि लज्जइ ण तेण ।

ण वि य अणागयवयगुणपसाहणं जुज्जइ विभत्ते ॥44॥

जाइ-कुल-रूव-लक्खण-सण्णा-संबंधओ अहिगयस्स ।

बालाइभावदिट्ठविगयस्स जह तस्स संबंधो ॥45॥

तेहिं अतीताणागयदोसगुणदुगुंछणऽब्भुवगमेहिं ।

तह बंध-मोक्ख-सुह-दुक्खपत्थणा होइ जीवस्स ॥46॥

अन्वयार्थ : [जोव्वणत्थो] युवावस्था (में) [बालो] बालक [ण] नहीं [होइ] होता (रहता है) [अण्णो] अन्य (भिन्न होने पर) [वि] भी [ण] नहीं (है) [तेण] उस (बालचरित्र) से [लज्जइ] लजाता (है, इसी तरह) [विभत्ते] विभक्त (अत्यन्त भिन्न होने पर) [अणागयवयगृण पसाहणं] भावी आयुष्य (के लिए), गुण] साधना [वि] भी [ण] नहीं [जुज्जइ] घटती है ।

[जाइ] जाति [कुल] कुल [रूव] रूप [लक्खण] लक्षण [सण्णा] संज्ञा [संबंधओ] सम्बन्ध से [अहिगयस्स] ज्ञात [बालाइभाव] बालक आदि अवस्था [दिट्ठ] देखे गए [विगयस्स] विगत (विनष्ट) [तस्स] उस (पुरुष) का [जह] जैसा [संबंधो] सम्बन्ध (घटित होता है) ।

[तेहिं] उन दोनों (अवस्थाओं से) [अइयाणागय] अतीत (भूतकाल), अनागत (भविष्यत् काल) [दोष] दोष [गुण] गुण [दुगुंछण] जुगुप्सा (ग्लानि) [अब्भुवगमेहिं] प्राप्त होने से [तह] उसी प्रकार [जीवस्स] जीव के [बंधमोक्ख सुहदुक्खपत्थणा] बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख (की) अभिलाषा होती है ।

दूध और जल के समान जीव और शरीर भिन्न-अभिन्न

अण्णोण्णाणुगयाणं 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं ।

जह दुद्ध-पाणियाणं जावंत विसेसपज्जाया ॥47॥

रूआइपज्जवा जे देहे जीवदवियम्मि सुद्धम्मि ।

ते अण्णोण्णाणुगया पण्णवणिज्जा भवत्थम्मि ॥47॥

अन्वयार्थ : [जह] जिस प्रकार [दुद्धपाणियाणं] दूध-पानी का [विभयण मजुत्तं] विभाजन (पृथक्करण) अयुक्त है (उसी प्रकार) [अण्णोण्णाणुगयाणं] परस्पर ओतप्रोत [जावंत] जितनी [विसेसपज्ञाया] विशेष पर्यायें हैं [इमं] इसकी [व] अथवा [तं] उसकी [व] या [त्ति] इस प्रकार [विभयणमजुत्तं] विभाजन अयुक्त है ।

[देहे] शरीर में [जे] जो [रूवाइपज्जवा] रूपादि पर्यायें हैं [सुद्धम्मि] शुद्ध में [जीवदवियम्मि] जीवद्रव्य में (जो पर्यायें हैं), [भवत्थम्मि]

संसारी (जीव) में [ते] वे (पर्यायें) [अण्णोष्णाणुगया] परस्पर में मिली हुई [पण्णवणिज्जा] कहनी चाहिए ।

आत्मा और मन, वचन, काय का एकत्व

एवं 'एगे आया एगे दंडे य होइ किरिया य' ।
करणविसेसेण य तिविहजोगसिद्धी वि अविरुद्धा ॥49॥

अन्वयार्थ : [एवं] इस प्रकार [एगे] एक में [आया] आत्मा [एगे] एक में [य] और [दंडें] दण्ड (मन, वचन और शरीर में) [य] और [किरिया] क्रिया (सिद्ध होती है) [य] और [करणविसेसेण] करण विशेष से (के कारण) [तिविहजोगसिद्धी] त्रिविध योग (मन, वचन, काय की) सिद्धि [वि] भी [अविरुद्धा] अविरुद्ध है ।

बाह्याभ्यन्तर व्यवस्था की विशिष्टता

ण य बाहिरओ भावो अब्भंतरओ य अस्थि समयम्मि ।
णोइंदियं पुण पडुञ्च होइ अब्भंतरविसेसो ॥50॥

अन्वयार्थ : [समयम्मि] शास्त्र में [बाहिरओ] बाहरी [अब्भिंतरओ] भीतरी [य] और [भावो] भाव [न] नहीं [य] और है [णोइंदियं] नोइन्द्रिय (मन) [पुण] फिर [पड़च्च] आश्रय करके [अब्भिंतरविसेसो] आभ्यन्तर विशेष [होइ] होता है ।

दोनों नयों की मान्यता

दव्वट्ठियस्स आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ ।
बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ ॥51॥
दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा ।
अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स ॥52॥

अन्वयार्थ : [आया] आत्मा [कम्मं] कर्म को [बंधइ] बाँधता (है) [फलं] फल को [च] और [बेइए] भोगता (है) (यह मत) [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) का (है) [वीयस्स] दूसरे का (पर्यायार्थिक नय) [भावमेत्तं] भाव मात्र (है वह) [ण] नहीं [कुणइ] करता (बन्ध) है [ण] नहीं [य] और [कोइ] कोई [वेइए] (फल) भोगता है ।
जो [चेव] ही [कुणइ] करता है [सो] वह [चेव] ही [णियमा] नियम से [वेयइ] भोगता है (यह मत) [दव्वट्ठियस्स] द्रव्यार्थिक (नय) का है [अण्णो] अन्य [करेइ] करता (है और) [अण्णो] अन्य [परिभुंजइ] भोगता है (यह मत) [पज्जवणयस्स] पर्यायार्थिक (नय) का है ।

समन्वय में जैनदृष्टि

जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति एएसु ।
सा ससमयपण्णवणा 'तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥53॥

अन्वयार्थ : [एएसु] इन दोनों के [संजुज्जन्तेसु] संयुक्त होने पर [जें] जो (वस्तु के सम्बन्ध में) [वयणिज्जवियप्पा] कथन करने योग्य विकल्प [होंति] होते हैं [सा] वह [सूसुमयपण्णवणा] अपने सिद्धान्त की प्ररूपणा है [अण्णा] अन्य (विचारधारा) [तित्थयरासारणा] तीर्थंकर की आशातना है ।

वक्ता किसी एक नय से कथन करे

पुरिसज्जायं तु पडुच जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं ।
परिकम्मणाणिमित्तं दाएही सो विसेसं पि ॥54॥

अन्वयार्थ : [जाणओ] जानकार (सिद्धान्तज्ञाता) [पुरिसज्जायं] पुरुष समूह को [तु] तो [पडुच्च] अपेक्षा करके [अण्णयरं] दोनों में से किसी एक (नय का) [पण्णवेज्ज] प्रतिपादन करना चाहिए [परिकम्मणा] गुणविशेष के आधार के [णिमित्तं] निमित्त (से) [सो] वह [विसेसं] विशेष को [पि] भी [दाएही] दिखलायेगा ।

दर्शन और ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं

जं सामण्णग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं णाणं ।

दोण्ह वि णयाण एसो पाडेक्कं अत्थपज्जाओ ॥1॥

अन्वयार्थ : [जं] जो [सामण्णं] सामान्य का [गहणं] ग्रहण है, वह [एयं] यह [दंसणं] दर्शन है [विसेसियं] विशेष रूप से जानना [णाणं] ज्ञान है [दोण्ह] दोनों [वि] भी ही [णयाण] नयों के [पाडेक्कं] प्रत्येक पृथक-पृथक् रूप से [एसो] यह अर्थबोध सामान्य [अत्थपज्जाओ] अर्थपर्याय है ।

दर्शन तथा ज्ञान काल में भेद

दव्वट्ठिओ वि होऊण दंसणे पज्जवट्ठिओ होइ ।

उवसमियाईभावं पडुच्च णाणे उ विवरीयं ॥2॥

अन्वयार्थ : [दंसणे] दर्शन के समय में [दव्वट्ठिओ] द्रव्यार्थिक नय का विषय [वि] भी [होऊण] हो कर (जीव) [उवसमियाईभावं] औपशमिक आदि भाव की [पडुच्च] अपेक्षा से [पज्जवट्ठिओ] पर्यायार्थिक भी [होइ] होता है [उ] किन्तु [णाणे] ज्ञान के समय में [विवरीयं] विपरीत भासित होता है ।

केवलज्ञान में ज्ञान, दर्शन का काल भिन्न नहीं

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो ।

केवलणाणं पुण दसणं ति णाणं ति य समाणं ॥3॥

अन्वयार्थ : [णाणस्स] ज्ञान की [य] और [दरिसणस्स] दर्शन की [य] और (भिन्नकालता विषयक) [विसेसो] विशेष भेद [मण पज्जवणाणंतो] मन:पर्ययज्ञान पर्यन्त है [पुण] पुन: परन्तु [केवलणाणं] केवलज्ञान में [दसणं] दर्शन [ति] यह [णाणं] ज्ञान [ति] यह [य] और [समाणं] समान हैं ।

कुछ आचार्यों का भिन्न मत

केई भणंति "जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो" त्ति ।

सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाऽभीरू ॥4॥

अन्वयार्थ : [तित्थयरासायणाऽभीरू] तीर्थंकर की आशातना (अवज्ञा) से भयभीत (डरने) वाले अतः [सुत्तमवलम्बमाणा] सूत्र (आगम ग्रन्थों) का अवलम्बन लेने वाले [केइ] कितने आचार्य कहते हैं [जइया] जब [जाणइ] जानते हैं [तइया] तब [जिणो] केवली [ण] नहीं [पासइ] देखते हैं [त्ति] यह [भर्णति] कहते हैं ।

केवली के ज्ञान-दर्शन में काल-भेद नहीं

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं ।

तह दंसणं पि जुज्जइ णियआवरणक्खयस्संते ॥5॥

भण्णइ खीणावरणे जह मइणाणं जिणे ण संभवइ ।

तह खीणावरणिज्जे विसेसओ दंसणं नत्थि ॥6॥

सुत्तम्मि चेव साई अपज्जवसियं ति केवलं वुत्तं ।

सुत्तासायणभीरूहि तं च दट्ठव्वयं होइ ॥7॥

संतम्मि केवले दंसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि ।

केवलणाणम्मि य दंसणस्स तम्हा सणिहणाइं ॥८॥

अन्वयार्थ : [जहा] जिस प्रकार [केवल णाणं] केवलज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान [केवलणाणावरणक्खयजायं] केवलज्ञानावरण के क्षय से उत्पन्न

होता है [तह] उसी प्रकार [णियआवरणवखयस्संते] निज आवरण (दर्शनावरण) क्षय के अनन्तर [दंसणं] दर्शन (केवल-दर्शन) [पि] भी [जुज्जइ] घटता है ।
[जह] जिस प्रकार [खीणावरणे] क्षीण आवरण वाले जिन में [जिणे] जिन (भगवान्) में [मइणाणं] मतिज्ञान [ण] नहीं [संभवइ] सम्भव है [तह] उसी प्रकार [खीणावरणिज्जे] क्षीण आवरण वाले जिन में [विसेसओ] विशेष रूप से भिन्न काल में [दंसणं] दर्शन [णत्थि] नहीं है।
[सुत्तम्मि] सूत्र (आगम) में [चेव] ही [केवलं] केवल दर्शन और ज्ञान को [साईअपज्जवसियं] सादि-अनन्त (अपर्यवसित) [ति] यह [वुत्तं] कहा गया है [सुत्तासायणभीरुहि] आगम सूत्र की आशातना से भयभीतों को (के द्वारा) [तं] वह [च] और [दट्ठव्वयं] विचारणीय (दृष्टव्य) [होइ] होता है ।
[केवले] केवली में [दंसणम्मि] दर्शन के [संतम्मि] होने पर [णाणस्स] ज्ञान का (केवलज्ञान का) होना [संभवो] सम्भव [णत्थयि] नहीं है [केवलणाणम्मि] केवलज्ञान में [च] और [दंसणस्स] दर्शन (केवलदर्शन) का होना सम्भव नहीं है [तम्हा] इस कारण से [सणिहणाइं] सादि-सान्त हो जाएगा ।

केवली के एक ही उपयोग

दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वअरं ।
होज्ज समं उप्पाओ हंदि दुए णत्थि उवओगा ॥9॥
अन्वयार्थ : [दंसणणाणावरणक्खए] दर्शनावरण और ज्ञानावरण के क्षय होने पर [समाणस्मि] समान रूप में [कस्स] किसका उत्पाद [पुव्वअरं] पहले (पूर्वतर) होता है, क्योंकि दोनों का [समं] एक साथ [उप्पाओ] उत्पाद [होज्ज] हो तो [हंदि] निश्चय से [बे] दो [उवओगा] उपयोग [णत्थि] (एक साथ) नहीं हैं ।

सर्वज्ञ सामान्य-विशेष रूप पदार्थों का ज्ञाता

जइ सव्वं सायारं जाणइ एक्कसमएण सव्वण्णू ।
जुज्जइ सयावि एवं अहवा सव्वं ण याणाइ ॥10॥
परिसुद्धं सायारं अवियत्तं दंसणं अणायारं ।
ण य खीणावरणिज्जे जुज्जइ सुवियत्तमवियत्तं ॥11॥
अद्दिट्ठं अण्णायं च केवली एव भासइ सया वि ।
एगसमयम्मि हंदी वयणवियप्पो न संभवइ ॥12॥
अण्णायं पासंतो अद्दिट्ठं च अरहा वियाणंतो ।
किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्णु त्ति वा होइ ॥13॥
केवलणाणमणंतं जहेव तह दंसणं पि पण्णत्तं ।
सागारग्गहणा हि य णियमपरित्तं अणागारं ॥14॥
अन्वयार्थ : [जह] यदि [सब्वण्णू] सर्वज्ञ [एक्कसमएण] एक साथ एक समय में [सव्वं] सब [सायारं] साकार आकार सहित पदार्थों को [जाणइ] जानता है तो [सया वि एवं] सदा ही इस प्रकार [जुज्जइ] युक्ति (युक्त) हो सकती है [अहवा] अन्यथा [सव्वं] सब को [ण] नहीं [याणाइ] जानता है ।
[सायारं] साकार ज्ञान [परिसुद्धं] निर्मल होता है [अणायारं] अनाकार [दंसण्णं] दर्शन [अवियत्तं] अव्यक्त रहता है [खीणावरणिज्जे] क्षीण आवरण वाले केवली में [सुवियत्तमवियत्तं] सुव्यक्त तथा अव्यक्त का भेद [ण] नहीं [य] और यह [जुज्जइ] युक्त है ।
[केवली] केवली भगवान् [एव] ही [सया वि] सदा ही [अहिट्ठं] अदृष्ट [च] और [अण्णायं] अज्ञात [भासइ] बोलते हैं [हंदी] निश्चय से [एगसमयम्मि] एक समय में [वयणवियप्पो] वचन-विकल्प [ण] नहीं [संभवइ] सम्भव है ।
[अण्णायं] अज्ञात को [पासंतो] देखने वाला [य] और [अद्दिट्ठं] अदृष्ट को [वियाणंतो] जानता हुआ [अरहा] अर्हन् केवली [किं] क्या [जाणइ] जानता है और [किं] क्या [पासइ] देखता है [त्ति] यह [कह] किस प्रकार [सव्वण्णु] सर्वज्ञ [वा होइ] होता है ?

[जहेव] जिस प्रकार [केवलणाणमणंतं] केवलज्ञान अनन्त है [तह] वैसे ही [दंसणं] दर्शन [वि] भी [पण्णत्तं] कहा गया है [किन्तु सागारग्गहणाहि] साकार ग्रहण की अपेक्षा से [य] और (पाद-पूरण के लिए) [अणागारं] अनाकार (दर्शन) [णियम] नियम से [परित्त] अल्प (परिमित) है।आगम में केवली भगवान का दर्शन और ज्ञान अनन्त कहा गया है । परन्तु उनके दर्शन, ज्ञान के उपयोग में क्रम भाना जाय तो साकार-ग्रहण की अपेक्षा से परिमित विषय वाला होगा, जिससे उनके दर्शन में अनन्ता नहीं बन सकती । अतएवं केवली भगवान् में एक समय में ही उपयोग मानना चाहिए ।

क्रमोपयोगवादी का कथन

भण्णइ जह चउणाणी जुज्जइ णियमा तहेव एयं पि ।
भण्णइ ण पंचणाणी जहेव अरहा तहेयं पि ॥15॥

अन्वयार्थ : [भण्णइ] कहता है [जह] जिस प्रकार [चउणाणी] चार ज्ञान वाला [जुज्जइ] संयुक्त होता है [तहेव] उसी प्रकार ही [णियमा] नियम से [एयं पि] यह भी है [सिद्धान्ती भण्णइ] कहता है [जहेव] जिस प्रकार से ही [अरहा] केवली (सर्वज्ञ) [पंचणाणी] पाँच ज्ञान वाले [ण] नहीं [तहा] उस प्रकार [एयं पि] यह भी है ।

ज्ञान का विषय पदार्थ

पण्णवणिज्जा भावा समत्तसुयणाणदंसणा विसओ ।
ओहिमणपज्जवाण उ अण्णोण्णविलक्खणा विसओ ॥१६॥
तम्हा चउव्विभागो जुज्जइ ण उ णाणदंसणजिणाणं ।
सयलमणावरणमणंतमक्खयं केवलं जम्हा ॥१७॥

अन्वयार्थ : [समत्त] समस्त (सभी) [सुयणाणदंसणा] श्रुतज्ञान (आगम) रूप दर्शन का [विसओ] विषय [पण्णवणिज्जा] प्रज्ञापनीय (शब्दों के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य) [भावा] पदार्थ (द्रव्यादिक) पदार्थ हैं [उ] किन्तु [ओहि मणपज्जवाण] अवधि ज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के [अण्णोण्ण] परस्पर [विलक्खण] विलक्षण (भिन्नता) वाले पदार्थ [विसओ] विषय हैं ।
[तम्हा] इसलिये [चउव्विभागो] चार विभाग मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान का विभाग [जुज्जइ] युक्त है [ण उ] किन्तु नहीं बनता है [जिणाणं] जिन (केवली) के [णाणदसंण] ज्ञान-दर्शन में [जम्हा] क्योंकि [केवल] केवल ज्ञान [सयलं] सम्पूर्ण [अणावरणं] अनावरण [अणंतं] अनन्त और [अक्खयं] अक्षय है ।

सामर्थ्य के अनुसार सूत्रों की व्याख्या

परवत्तव्वयपक्खा अविसिट्ठा तेसु तेसु सुत्तेसु ।
अत्थगईअ उ तेसिं वियंजणं जाणओ कुणइ ॥18॥

अन्वयार्थ : [तेसुतेसु] उनमें-उनमें [सुत्तेसु] सूत्रों में [परवत्तव्वयपक्खा] पर (अन्य दर्शनों के) वक्तव्य (पक्ष) के समान [अविसिट्ठा] अविशिष्ट सामान्य हैं [उ जाणओ] इसलिए जानने वाला [अत्यगईय] अर्थ की गति के अनुसार [तेसिं] उन (सूत्रों) का [वियंजणं] प्रकटन (व्यक्त) [कुणइ] करता है ।

मन:पर्यय ज्ञान ही है दर्शन नहीं

जेण मणोविसयगयाण दंसणं णत्थि दव्वजायाण ।
तो मणपज्जवणाणं णियमा णाणं तु णिद्दिट्ठं ॥19॥

अन्वयार्थ : [जेण] जिस कारण से [मणोविसयगयाणं] मन के विषयगत [दव्वजायाणं] द्रव्य-समूह का [दंसणं] दर्शन [णत्थि] नहीं होता है [तो] इसलिए [मणपज्जवणाणं] मनःपर्ययज्ञान को [णियमा] नियम से [णाणं] ज्ञान [णिहिट्ठं] निर्दिष्ट किया गया है ।

केवलदर्शन, केवलज्ञान कहने का तात्पर्य

चक्खुअचक्खुअवहिकेवलाण समयम्मि दंसणविअप्पा ।
परिपढिया केवलणाणदंसणा तेण ते अण्णा ॥20॥
अन्वयार्थ : [समयस्मि] आगम में [चक्खुअचक्खुअवहिकेवलाण] चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल (दर्शन) (ये) [दंसणवियप्पा] दर्शन के भेद प्रकट किए गए हैं (अतएव) [परिपढिया] पढ़े गए [तेण ते] उससे वे [केवलणाणदंसणा] केवलज्ञान और केवलदर्शन [अण्णा] अन्य (भिन्न) हैं ।

केवलदर्शन और केवलज्ञान में अन्तर क्या ?

दंसणमोग्गहमेत्तं 'घडो' त्ति णिव्वण्णणा हवइ णाणं ।
जह एत्थ केवलाण वि विसेसणं एत्तियं चेव ॥21॥
दंसणपुव्वं णाणं णाणणिमित्तं तु दंसणं णत्थि ।
तेण सुविणिच्छियामो दंसणणाणाण अण्णत्तं ॥22॥
अन्वयार्थ : [जह] जैसे [ओग्गहमेत्तं] अवग्रह विकल्प ज्ञान मात्र [दंसणं] दर्शन है [घडो] घड़ा [त्ति] यह [णिव्वण्णणा] देखने से [णाणं] मतिज्ञान [हवइ] होता है [तह] वैसे [एत्थ] यहाँ [केवलणाण] केवलज्ञान (और केवलदर्शन में) [वि] भी [एत्तियं] इतनी ही [विसेसण] विशेषता [चेव] और भी है ।
[दंसणपुव्वं] दर्शन पूर्वक [णाणं] ज्ञान होता है [णाण णिमित्तं] ज्ञान के निमित्त पूर्वक [तु] तो [दंसण] दर्शन [णत्यि] नहीं है [तेण] इससे (हम) [सुविणिच्छियामो] भली-भाँति निश्चय करते हैं [दंसगणाणा] दर्शन और ज्ञान में [अण्णत्तं] अन्यत्व [ण] नहीं हैं ।

मतिज्ञान ही दर्शन

जइ ओग्गहमेत्तं दंसणं ति मण्णसि विसेसिअं णाणं ।
मइणाणमेव दंसणमेवं सइ होइ निप्फण्णं ॥23॥
एवं सेसिंदियदंसणम्मि नियमेण होइ ण य जुत्तं ।
अह तत्थ णाणमेत्तं घेप्पइ चक्खुम्मि वि तहेव ॥24॥
अन्वयार्थ : [जइ] यदि [ओग्गह] अवग्रह (आद्य ग्रहण) [मेत्तं] मात्र [दंसणं] दर्शन है [ति] यह (तथा) [विसेसियं] विशेष (बोध) [णाणं] ज्ञान है [मण्णसि] मानते हो तो [एवं] इस प्रकार [सइ] होने पर (यह मतिज्ञान) [णिप्फण्णं] निष्पन्न (फलित) [होइ] होता है ।
[एवं] इस प्रकार होने पर [सेसिंदियदंसणम्मि] शेष इन्द्रियों के दर्शन में भी [णियमेण] नियम से यही मानना पड़ेगा, किन्तु [जुत्तं] युक्त [ण] नहीं [होइ] होता है [अह] और [तत्थ] वहाँ उन इन्द्रिय विषयक पदार्थों में [णाणमेत्तं] ज्ञान मात्र [घप्पई] ग्रहण किया जाता है तो [चक्खुम्मि] चक्षु इन्द्रिय के विषय में [वि] भी [तहेव] उसी प्रकार से ही मान लेना चाहिए ।

आगम में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन क्यों?

णाणं अप्पुट्ठे अविसए य अत्थम्मि दंसणं होइ ।
मोत्तूण लिंगओ जं अण्णागयाईयविसएसु ॥25॥
अन्वयार्थ : [अप्पुट्ठे] अस्पृष्ट में [अविसए] [य] और अविषय भूत [अत्थम्मि] पदार्थ में [दंसणं] दर्शन [होइ] होता है [अण्णागयाईयविसएसु] अनागत (भविष्य) आदि के विषयों (पदार्थों) में [लिंगओ] हेतु से जो ज्ञान होता है [जं] जिसे उसे [मोत्तृण] छोड़ कर दिया जाता है ।

मन:पर्यय ज्ञान में मन:पर्यय दर्शन का प्रसंग नहीं

मणपज्जवणाणं दंसणं ति तेणेह होइ ण य जुत्तं ।
भण्णइ णाणं णोइंदियम्मि ण घडादयो जम्हा ॥26॥
अन्वयार्थ : [तेणेह] इसलिए (यहाँ व्याख्या के अनुसार प्रसंगतः) [मणपज्जवणाणं] मन:पर्ययज्ञान को [दंसणं] दर्शन मानना पड़ेगा [ति]

यह [ण] नहीं [होइ] होता है [य] और [जुत्त] युक्त [भण्णइ] कहा जाता है [जम्हा] जिससे [घडादओ] घट आदि [णोइंदियम्मि] नोइन्द्रिय (मन) के विषय में [णाणं] ज्ञान (मन:पर्यय) प्रवर्तमान [ण] नहीं होता है ।

अल्पज्ञ का पदार्थ-ज्ञान दर्शनपूर्वक

मइसुयणाणणिमित्तो छउमत्थे होइ अत्थउवलंभो ।
एगयरम्मि वि तेसिं ण दंसणं दसणं कत्तो ? ॥27॥

अन्वयार्थ : [छउमत्थे] छद्मस्थ (अल्प ज्ञान वाले जीवों) में [मइसुयणाण] मतिज्ञान (और) श्रुतज्ञान (के) [णिमित्तो] निमित्त (से) [अत्यउवलंभो] पदार्थ (का) ज्ञान [होइ] होता है [तेसिं] उन दोनों (ज्ञानों में से) में [एगयरम्मि] एक में (यदि) [ण] नहीं [दंसणं] दर्शन (ज्ञान के पहले वस्तु को देखना है) (तो फिर) [दंसणं] दर्शन [कत्तो] कहाँ से हो सकता है ?

श्रुतज्ञान में दर्शन शब्द लागू नहीं

जं पञ्चक्खग्गहणं ण इन्ति सुयणाणसम्मिया अत्था ।
तम्हा दंसणसद्दो ण होइ सयले वि सुयणाणे ॥28॥

अन्वयार्थ : [जं] जिस कारण [सुयणाणसम्मिया] आगम के ज्ञान से जाने गए [अत्था] पदार्थ [पञ्चक्खग्गहणं] प्रत्यक्ष ग्रहण को [ण] नहीं [इंति] प्राप्त होते हैं [तम्हा] इस कारण [सयले] सम्पूर्ण में [वि] भी [सुयणाणे] श्रुतज्ञान में [दंसणसद्दो] दर्शन शब्द लागू [ण] नहीं [होइ] होता है ।

अवधिज्ञान में दर्शन शब्द का प्रयोग उपयुक्त

जं अप्पुट्ठा भावा ओहिण्णाणस्स होंति पच्चक्खा ।
तम्हा ओहिण्णाणे दंसणसद्दो वि उवउत्तो ॥29॥

अन्वयार्थ : [जं] क्योंकि [अप्पुट्ठा] अस्पृष्ट [भावा] पदार्थ [ओहिण्णाणस्स] अवधिज्ञान के [पच्चक्खा होंति] प्रत्यक्ष होते हैं [तम्हा ओहिणाणे] इसलिए अवधिज्ञान में [वि] भी [दंसणसदो] दर्शन शब्द [उवउत्तो] उपयुक्त है ।

केवली के भेदविहीन ज्ञान, दर्शन

जं अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा ।
तम्हा तं णाणं दंसणं च अविसेसओ सिद्धं ॥30॥

अन्वयार्थ : [जं] जिस कारण [केवली] केवली भगवान् [णियमा] नियम से [अप्पुट्ठ] अस्पृष्ट [भावे] पदार्थों को [जाणइ] जानता है [पासइ] देखता है [य] और [तम्हा] इस कारण [तं] उसे [णाणं दंसणं च] ज्ञान और दर्शन [अविसेसओ सिद्धं] भेद-रहित सिद्ध होते हैं ।

युगपत् अनन्तदर्शन ज्ञानयुक्त स्वसमय

साई अपज्जवसियं ति दो वि ते ससमयओ हवइ एवं ।
परतित्थयवत्तव्वं च एगसमयंतरुप्पाओ ॥31॥

अन्वयार्थ : [ते] वे (दोनों - केवलदर्शन, केवलज्ञान) [दो वि] दोनों ही [साई] सादि, [अपज्जवसियं] अपर्यवसित (बदलते रहते हैं) [च] और [एगसमयंतरुप्पाओ] (दोनों) एक समय के अन्तर से उत्पन्न होते हैं [एवं] इस प्रकार [ससमयओ] स्वसमय (परमात्मा) [हवइ] होता है [परतित्थयवत्तव्वं] अन्य मत का वक्तव्य है ।

तत्त्व-रुचि रूप श्रद्धान सम्यग्दर्शन

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावओ भावे ।
पुरिसस्साभिणिबोहे दंसणसद्दो हवइ जुत्तो ॥32॥

सम्मण्णाणे णियमेण दंसणं दसणे उ भयणिज्जं ।
सम्मण्णाणं च इमं ति अत्थओ होइ उववण्णं ॥33॥

अन्वयार्थ : [एवं] इस प्रकार [जिणपण्णसे] जिन तीर्थंकर कथित [भावे] पदार्थों का [भावओ] भावपूर्वक [सहहंमाणस्स] श्रद्धान करने वाले का [पुरिसस्स] पुरुष के [अभिणिबोहे] अभिनिबोध मन और इन्द्रियों की सहायता से होने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान में [दंसणसहो] दर्शन शब्द [जुंत्तो] युक्त उपयुक्त [हवइ] होता है ।

[सम्मण्णाणे] सम्यग्ज्ञान के होने पर [णियमेण] नियम से [दंसणं] दर्शन सम्यग्दर्शन होता है [दंसणे] दर्शन के होने पर [उ] तो [सम्मण्णाणं] सम्यग्ज्ञान [भयणिज्जं] भजनीय होता है [इमं] यह [ति] इस प्रकार [अत्थओ] **अर्थ** से [उववण्णं] सिद्ध [होइ] होता है ।

एक बार होने पर केवलज्ञान सतत

केवलणाणं साई अपज्जवसियं ति दाइयं सुत्ते ।
तेत्तियमित्तोत्तूणा केइ विसेसं ण इच्छंति ॥34॥
जे संघयणाईया भवत्थकेवलिविसेसपज्जाया ।
ते सिज्झमाणसमये ण होंति विगयं तओ होइ ॥35॥
सिद्धत्तणेण य पुणो उप्पण्णो एस अत्थपज्जाओ ।
केवलभावं तु पडुच्च केवलं दाइयं सुत्ते ॥36॥

अन्वयार्थ : [केवलणाणं] केवलज्ञान [साई] सादि [अपज्जवसियं] अपर्यवसित (परिवर्तनशील) है [त्ति] यह [सुत्ते] सूत्र में [दाइयं] दर्शाया गया है [तेत्तियमित्तोत्तूणा] उतने मात्र से गर्वित [केइ] कुछ [विसेसं] विशेष (केवल ज्ञान को पर्यवसित) को [ण] नहीं [इच्छंति] चाहते (मानते) हैं ।

[भवत्थकेवलि] भवस्थ केवली की [विसेसपज्जाया] विशेष पर्यायें संहनन आदि रूप [जे] जो [संघयणाईया] संहनन आदि हैं [तै] वे [सिज्ममाणसमये] सिद्ध होने के समय में [ण] नहीं [होंति] होती [तओ] इस कारण [विगयं] विगत (पर्यवसित) [होइ] होती है ।

[एस] यह (केवलज्ञान रूप) [अत्थपज्जाओ] **अर्थ**पर्याय [सिद्धत्तणेण] सिद्धत्व रूप से [य] और [पुणो] फिर [उप्पण्णो] उत्पन्न होती है [केवलभावं] केवलभाव की [पडुच्च] अपेक्षा से [केवलं] केवलज्ञान को (सादि अपर्यवसित) [सुत्ते] सूत्र में [दांइयं] दिखाया गया है ।

परस्पर विरुद्धता होने पर केवलज्ञान कैसे ?

जीवो अणाइणिहणो केवलणाणं तु साइयमणंतं ।
इअ थोरम्मि विसेसे कह जीवो केवलं होइ ॥37॥
तम्हा अण्णो जीवो अण्णे णाणाइपज्जवा तस्स ।
उवसमियाईलक्खणविसेसओ केइ इच्छन्ति ॥38॥
अह पुण पुव्वपयुत्तो अत्थो एगंतपक्खपडिसेहे ।
तह वि उयाहरणमिणं ति हेउपडिजोअणं वोच्छं ॥39॥
जह कोई सट्ठिवरिसो तीसइवरिसो णराहिवो जाओ ।
उभयत्थ जायसद्दो वरिसविभागं विसेसेई ॥40॥
एवं जीवद्दव्वं अणाइणिहणमविसेसियं जम्हा ।
रायसरिसो उ केवलिपज्जाओ तस्स सविसेसो ॥41॥
जीवो अणाइनिहणो 'जीव' त्ति य णियमओ ण वत्तव्वो ।
जं पुरिसाउयजीवो देवाउयजीवियविसिट्ठो ॥42॥

अन्वयार्थ : [जीवो] जीव [अणाइणिहणो] अनादिनिधन है [केवल णाणं] केवलज्ञान [तु] तो [साइयमण्णतं] सादि अनन्त है [इय थोरम्मि] मोटे सामान्य रूप में और [विसेसे] विशेष (पर्याय रूप) में [जीवो] जीव [केवलं] केवल ज्ञान रूप [कह] कैसे [होइ] होता है ?

[तम्हा] इस कारण [उवसमियाइ] उपशम आदि [लक्खण] लक्षण की [विसेसओ] भिन्नता से [जीवो] जीव [अण्णो] अन्य भिन्न है और [तस्स] उस की [णाणाइ] पज्जवा] ज्ञान आदि पर्यायें [अण्णे] भिन्न हैं, ऐसा [केइ] कुछ [इच्छंति] कहते हैं ।
[अथ] और [एगंतपक्खपडिसेहे] एकान्त पक्ष के प्रतिषेध में [अत्थ] **अर्थ** (विषय) [पुव्वपउत्तो] पहले कहा जा चुका है [तह वि] तो भी [हेउपडिजोयणं] हेतु (का साध्य के साथ अविनाभाव) सम्बन्ध का [इणं] यह [उयाहरणं] उदाहरण [वोच्छं] कहूँगा ।
[जह] जैसे [कोइ] कोई (पुरुष) [सट्ठिवरिसो] साठ वर्ष का है [तीसइवरिसो] तीसवें वर्ष में वह [णराहिवो] राजा [जाओ] हुआ था [उभयत्थ] दोनों में यहाँ [जायसद्दो] जात शब्द (हुआ) [वरिसविभागं] वर्ष का विभाग [विसेसेइ] विशेषत: प्रकट करता है ।
[एवं] इस प्रकार [अविसेसियं] सामान्यत [जीवद्दव्वं] जीव द्रव्य [जम्हा] जिस लिए [अणाइणिहणं] अनादिनिधन है और [रायसरिसो] राजा के समान [उ] तो [तस्स] उसकी [केवलिपज्जाओ] केवली रूप पर्याय [सविसेसो] विशेष-सहित है ।
[जीवो] जीव [अणाइणिहणो] अनादिनिधन [जीव] जीव ही है [त्ति] ऐसा [य] भी [णियमओ] नियम से [ण] नहीं [वत्तव्वो] कहना चाहिए [क्योंकि, जं] जो [पुरिसाउय] मनुष्यायुज [जीवो] जीव में और [देवाउयजीविय] देवायुज जीव में [विसिट्ठो] विशिष्ट भेद है, वह नहीं बन सकेगा ।

केवलज्ञान : असंख्यात और अनन्त भी

संखेज्जमसंखेज्जं अणंतकप्पं च केवलं णाणं ।
तह रागदोसमोहा अण्णे वि य जीवपज्जाया ॥43॥

अन्वयार्थ : [केवल णाणं] केवलज्ञान [संखेज्जं] संख्यात [असंखेज्जं] असंख्यात [च] और [अणतकप्पं] अनन्त रूप (प्रकार) का है [तह] वैसे [रागदोसमोहा] राग, देष और मोह रूप [अण्णो वि] दूसरे भी [य] और [जीव पज्जाया] जीवपर्याय हैं ।

सामान्य और विशेष में भेद नहीं

सामण्णम्मि विसेसो विसेसपक्खे य वयणविणिवेसो ।
दव्वपरिणाममण्णं दाएइ तयं च णियमेइ ॥1॥
एगतणिव्विसेसं एयंतविसेसियं च वयमाणो ।
दव्वस्स पज्जवे पज्जवा हि दवियं णियत्तेइ ॥2॥

अन्वयार्थ : [सामण्णम्मि] सामान्य में [विसेसो] विशेष का [य] और [विसेसपक्खे] विशेष पक्ष में [वयणविणिवेसो] (सामान्य का) वचन विनिवेश होता है वह [दव्वपरिणाममण्णं] द्रव्य परिणाम और अन्य (स्थिति) को [दाएइ] दिखलाता है [च] और [तयं] तीनों (उत्पाद, व्यय ओर ध्रौव्य) को [णियमेइ] नियत करता है ।
[एगंतणिव्विसेसं] एकान्त सामान्य [च] और [एगंतविसेसियं] एकान्त विशेष का [वयमाणों] कथन करने वाला [दव्वस्स] द्रव्य की [पज्जवे] पर्यायों को और [पज्जवा] पर्यायों से [हि] निश्चय से [दवियं] द्रव्य को [णियत्तेइ] अलग करता है ।

सामान्य का समन्वयकारी प्रतीत्यवचन

पच्चुप्पण्णं भावं विगयभविस्सेहिं जं सम्मण्णेइ ।
एयं पडुच्चवयणं दव्वंतरणिस्सियं जं च ॥3॥
दव्वं जहा परिणयं तहेव अस्थि त्ति तम्मि समयम्मि ।
विगयभविस्सेहि उ पज्जएहिं भयणा विभयणा वा ॥4॥

अन्वयार्थ : [जं] जो वचन [पच्चुप्पण्णं] (अपने समय में उत्पन्न होने वाली) वर्तमान [भाव] पर्याय का [विगयभविस्सेहिं] अतीत तथा भावी पर्याय के साथ से [समण्णेइ] समन्वय करता है [च] और [दव्वंतरणिस्सियं] अन्य द्रव्यों से बाहर है [जं] जो [एयं] यह [पडुच्चवयणं] प्रतीत्यवचन (वास्तविक ज्ञानपूर्वक उच्चरित आप्त-वचन) है ।
[जहा] जिस प्रकार [दव्वं] द्रव्य [परिणयं] परिणत हुआ [तम्मि समयम्मि] उस-उस समय में [तहेव] उसी प्रकार ही [अत्थि] है [त्ति] इस

प्रकार [उ] तो [विगयभविस्सेहि] अतीत और भविष्यत् काल की [पज्जएहिं] पर्यायों के साथ [भयणा] अभेद [वा] और [विभयणा] भेद भी है ।

वस्तु में अस्तित्व ओर नास्तित्व दोनों

परपज्जवेहिं असरिसगमेहिं णियमेण णिञ्चमवि नत्थि ।
सरिसेहिं पि वंजणओ अस्थि ण पुणऽत्थपज्जाए ॥5॥
पच्चुप्पण्णम्मि वि पज्जयम्मि भयणागइं पडइ दव्वे ।
जं एगगुणाईया अणंतकप्पा गमविसेसा ॥6॥
अन्वयार्थ : [असरिसगमेहिं] असदृशी [परपज्जवेहिं] पर-पर्यायों की अपेक्षा से [णियमेण] नियम से [णिञ्चमवि] नित्य भी [णत्थि] नहीं है [सरिसेहिं पि] सदृशों में भी [वंजणओ] व्यंजन पर्यायों की अपेक्षा से [अत्थि] है [पुण] फिर [ण पुणऽत्थपज्जाए] अर्थपर्याय की अपेक्षा से नहीं है ।
[पच्चुप्पण्णम्मि वि] वर्तमान काल में भी [पज्जयम्मि] पर्याय में [दव्वे] द्रव्य [भयणागइं] भजनागति (उभयरूप) कथंचित् सत् और कथंचित् असत् को [पडइ] पड़ता (धारण करता) है [जं एगगुणाईया] जिस एक गुण को आदि लेकर [गुणविसेसा] उस गुण के विशेष [अणंतकप्पा] अनन्त प्रकार होते हैं ।

एक ही पुरुष में भेदाभेद

कोवं उप्पायंतो पुरिसो जीवस्स कारओ होइ ।
तत्तो विभएयव्वो परम्मि सयमेव भइयव्वो ॥7॥
अन्वयार्थ : [कोवं] क्रोध को [उप्पायंतो] उत्पन्न करता हुआ [पुरिसो] पुरुष [जीवस्स] (उत्तरवर्ती) जीव का [कारओ होइ] कारक होता है [तत्तो] इससे वह [विभएयव्वो] भेद योग्य है और [परम्मि] पर भव में [सयमेव] स्वयं ही होने से [भइयव्वो] अभेद योग्य है ।

क्या द्रव्य और गुण में भेद है?

रूव-रस-गंध-फासा असमाणग्गहण-लक्खणा जम्हा ।
तम्हा दव्वाणुगया गुण त्ति ते केइ इच्छंति ॥8॥
अन्वयार्थ : [जम्हा] जिस कारण [रूवरसगंधफासा] रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये [असमाणग्गहण] भिन्न प्रमाण से ग्रहण होते हैं और [लक्खणा] भिन्न लक्षण वाले हैं [तम्हा] इस कारण [ते] वे [दव्वाणुगया] द्रव्य के आश्रित [गुण] गुण हैं [त्ति]] ऐसा [कइ] कई (प्रवादी जन) [इच्छंति] मानते हैं ।

गुण पर्याय-संज्ञा है क्या ?

दूरे ता अण्णत्तं गुणसद्दे चेव ताव पारिच्छं ।
किं पज्जवाहिओ होज्ज पज्जवे चेवगुणसण्णा ॥9॥
दो उण णया भगवया दवट्ठिय-पज्जवट्ठिया नियया ।
एत्तो य गुणविसेसे गुणट्ठियणओ वि जुज्जंतो ॥10॥
जं च पुण अरिहया तेसु तेसु सुत्तेसु गोयमाईणं ।
पज्जवसण्णा णियया वागरिया तेण पज्जाया ॥11॥
परिगमणं पज्जाओ अणेगकरणं गुण त्ति तुल्लत्था ।
तह वि ण 'गुण' त्ति भण्णइ पज्जवणयदेसणा जम्हा ॥12॥
जंपन्ति अत्थि समये एगगुणो दसगुणो अणंतगुणो ।
रूवाई परिणामो भएणइ तम्हा गुणविसेसो ॥13॥

गुणसद्दमंतरेणावि तं तु पज्जवविसेससंखाणं ।
सिज्झइ णवरं संखाणसत्थधम्मो 'तइगुणो' त्ति ॥14॥
जह दससु दसगुणम्मि य एगम्मि दसत्तणं समं चेव ।
अहियम्मि वि गुणसद्दे तहेय एयं पि दट्ठव्वं ॥15॥

अन्वयार्थ : [दूरे ता अण्णत्तं] दूर रहे तो अन्यत्व (भिन्नपना) [गुणसद्दे चेव] गुण शब्द के विषय में ही [ताव] तब तक [पारिच्छं] विचार करना चाहिए [किं] क्या (गुण) [पज्जवाहिओ] पर्याय से अधिक (भिन्न) है या [पज्जवे] पर्याय में [चेवगुणसण्णा] ही गुण संज्ञा [होज्ज] होवे ।

[भगवया] भगवान् के द्वारा [उण] फिर [दवट्ठिय पज्जवट्ठिया] द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे [दो णया] दो नय [णियया] नियत किए गए हैं [एत्तो य] इससे भिन्न [गुणविसेसे] गुण विशेष होने पर [गुणट्ठियणओ] गुणार्थिकनय [वि] भी [जुज्जंतो] प्रयुक्त होता ।

[जं च पुण] और फिर [अरहया] अर्हन्त प्रभु ने [तेसु तेसु] उन उनमें [सुत्तेसु] सूत्रों में [गोयमाईणं] गौतम गणघर आदि के लिए [पज्जवसण्णा] पर्याय संज्ञा [णियया] नियत की है और [तेण] उन्होंने उनके द्वारा [पज्जाया] पर्यायें (गुण हैं), यह [वागरिया] व्याख्यान किया है ।

[परिगमणं] परिगमन (परिणमन, पलटना) [पज्जायो] पर्याय है [अणेगकरणं] अनेक रूप करना [गुण] गुण है [त्ति] यह [तुल्लत्था] तुल्य **अर्थ** वाले हैं दोनों [तह वि] तथापि (तो भी) [ण गुण] नहीं है गुण [त्ति] ऐसा [भण्णइ] कहा जाता है [जम्हा] जिससे क्योंकि [पज्जवणयदेसणा] पर्यायनय की देशना है ।

[एगगुणो] एक गुण [दसगुणो] दस गुण और [अणंतगुणो] अनन्त गुण वाला [रूवाई] रूप आदि [परिणामो] परिणाम [अत्थि] है [तम्हा] इसलिए [गुणविसेसो] गुण विशेष (रूपादि हैं, जिसे विषय करने वाला गुणार्थिक नय है - ऐसा कोई) [भण्णइ] कहता है यह [समये] आगम में [जंपंति] कहा जाता है ।

[गुणसद्दमंतरेणावि] गुण शब्द के बिना भी [तं तु] वह तो जो [पज्जवविसेससंखाणं] पर्याय गत विशेष संख्या को कहने वाले [सिज्झइ] सिद्ध होते हैं [णवरं] केवल वह [तइगुणो] उतना गुण है [त्ति] यह [संखाणसत्थघम्मो] गणित शास्त्र का धर्म है ।

[जह] जिस प्रकार [गुणसद्दे] गुण शब्द के [अहियम्मि वि] अधिक (होने) पर भी [दससु] दसों (वस्तुओं) में [दसगुणम्मि] दसगुनी में (वस्तुओं में) [य] और [एगम्मि] एक (वस्तु) में [दसत्तणं] दसपना [समं] समान [चेव] ही (होता है) [तहेय एयं पि] उसी प्रकार यह भी [दट्ठव्वं] समझना चाहिए ।

अभेदवादी का कथन

एयंतपक्खवाओ जो उण दव्व-गुण-जाइभेयम्मि ।
अह पुव्वपडिक्कुट्ठो उआहरणमित्तमेयं तु ॥16॥
पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय-भाऊणं एगपुरिससंबंधो ।
ण य सो एगस्स पिय त्ति सेसयाणं पिया होइ ॥17॥
जह संबंधविसिट्ठो सो पुरिसो पुरिसभावणिरइसओ ।
तह दव्वमिंदियगयं रूवाइविसेसणं लहई ॥18॥

अन्वयार्थ : [अह] और [दव्व-गुण-जाइभेयम्मि] द्रव्य (तथा) गुण (की) जाति (गत) भेद में [जो पुण] जो फिर [एयंतपक्खवाओ] एकान्त (रूप से) पक्षपात (है उसे) [पुव्वपडिक्कुट्ठो] पहले (ही) निषिद्ध (किया जा चुका) है [एयं तु] यह तो [उआहरणमित्तमेयं] उदाहरण मात्र है ।

[पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय-भाऊणं] पिता, पुत्र, नाती, भावज, भाई का [एगपुरिससंबंधो] एक (ही) पुरुष के साथ सम्बन्ध हो [सो] वह [एगस्स] एक का [पिय त्ति] पिता [सेसयाणं] शेष जनों का [पिया ण य होइ] पिता नहीं होता है ।

[जह] जिस प्रकार [संबंधविसिट्ठो] सम्बन्ध विशेष के होने पर [सो] वह [पुरिसो] पुरुष [पुरिसभाव णिरइसओ] पुरुष पर्याय (की) अधिकता (वाला है) [तह] वैसे ही [इंदियगयं] इन्द्रियगत (सम्बद्ध) [दव्वं] द्रव्य [रूवाईविसेसणं] रूप आदि विशेषण (वाला) [लभते] हो

जाता है ।

सर्वथा अभेद-पक्ष निर्दोष नहीं

होज्जाहि दुगुणमहुरं अणंतगुणकालयं तु जं दव्वं ।
रण उ डहरओ महल्लो व होइ संबंधओ पुरिसो ॥19॥

अन्वयार्थ : [जं] जो कोई [तु] तो [दव्वं] द्रव्य [दुगुणमहुरं] दुगुना मधुर हो [अणंतगुणकालयं] अनन्त गुना काला [होज्जाहि] होवे [वा] अथवा [पुरिसो] पुरुष [डहरओ] छोटा [महल्लो] बड़ा हो तो [संबंधओ] (इन्द्रियादिक के) सम्बन्ध से [ण उ होइ] नहीं होता है (किन्तु विशेष धर्म से होता है) ।

अभेदवादी का कथन

भण्णइ संबंधवसा जइ संबंधित्तणं अणुमयं ते ।
णणु संबंधविसेसे संबंधिविसेसणं सिद्धं ॥20॥

अन्वयार्थ : [जह] जिस प्रकार [संबंधवसा] सम्बन्ध के वश से [ते] तुम्हें [संबंधित्तणं] सम्बन्धीपन [अणुमयं] मान्य है [णणु] निश्चय से (वैसे ही) [संबंधविसेसं] सम्बन्ध विशेष (वस्तु) में [संबंधिविसेसणं] सम्बन्ध विशेषता भी [सिद्धं] सिद्ध हो जाती है ।

सिद्धान्ती का तर्क

जुज्जइ संबंधवसा संबंधिविसेसणं ण उण एयं ।
णयणाइविसेसगओ रूवाइविसेसपरिणामो ॥२१॥

अन्वयार्थ : [संबंधवसा] सम्बन्ध वश से [संबंधिविसेसणं] सम्बन्ध विशेष (वाली वस्तु) [ण] नहीं [जुज्जइ] प्रयुक्त होती है [उण] फिर [एयं] यह (ये) [णयणाइविसेसगओ] नेत्र आदि के विशेष सम्बन्ध (के कारण) [रूवाइ विसेसपरिणामो] रूप आदि विशेष परिणाम घटित होते हैं ।

प्रश्नोत्तर

भण्णइ विसमपरिणयं कह एयं होहिइ त्ति उवणीयं ।
तं होइ परणिमित्तं ण व त्ति एत्थऽत्थि एगंतो ॥22॥

अन्वयार्थ : [एयं] यह [विसमपरिणयं] विषम परिणाम रूप [कह] किस प्रकार [होहिइ] होगा [त्ति] यह (जो) [उवणीयं] घटित होता है [तं] वह [परणिमित्तं] पर-निमित्त (की अपेक्षा से घटित) [होइ] होता है [त्ति] यह (है) [ण व] अथवा नहीं (भी है, क्योंकि) [एगंतो] एकान्त [एत्थऽत्थि] यहाँ (इस विषय में) है नहीं ।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण-विचार

दव्वस्स ठिई जम्म-विगमा य गुणलक्खणं ति वत्त्वं ।
एवं सइ केवलिणो जुज्जइ तं णो उ दवियस्स ॥23॥
दव्वत्थंतरभूया मुत्ताऽमुत्ता य ते गुणा होज्ज ।
जइ मुत्ता परमाणू णत्थि अमुत्तेसु अग्गहणं ॥24॥

अन्वयार्थ : [दव्वस्स] द्रव्य का (लक्षण) [ठिई] स्थिति (ध्रौव्य) [जम्मविगमा] उत्पत्ति [य] और विनाश [गुणलक्खणं] गुण (पर्याय का) लक्षण (है) [ति] यह (ऐसा) [वत्त्वं] कहना चाहिए [एवं] इस प्रकार [सइ] होने पर (मान लेने से) [तं] वह (लक्षण) [केवलिणो] केवल [दवियस्स] द्रव्य का (तथा केवल गुण का) [जुज्जइ] घटता है [उ] किन्तु [दवियस्स] द्रव्य का अखण्ड वस्तु का [णो] नहीं । [दव्वत्थंतरभूया] द्रव्यान्तर (को) प्राप्त [ते] वे [गुणा] गुण [मुत्तामुत्ता] मूर्त [य] और अमूर्त [होज्जा] होंगे [जइ] यदि [मुत्ता] मूर्त हों तो कोई परमाणु [णत्यि] नहीं है (होगा) [अमृत्तेसु] अमूर्त होने पर [अग्गहणं] परमाणु ग्रहण नहीं होंगे ।

प्रस्तुत वार्ता का प्रयोजन

सीसमईविप्फारणमेत्तत्थोऽयं को समुल्लावो ।
इहरा कहामुहं चेव णत्थि एवं ससमयम्मि ॥25॥
ण वि अस्थि अण्णवादो ण वि तव्वाओ जिणोवएसम्मि ।
तं चेव य मण्णंता अवमण्णंता ण याणंति ॥26॥

अन्वयार्थ : [सीसमई] शिष्य (जनों की) बुद्धि (को) [विप्फारण] विकसित करने [मेत्तत्थोऽयं] मात्र प्रयोजन (से) यह [समुल्लावो] प्रबन्ध (कथा वार्ता) [कओ] किया गया है [इहरा] अन्यथा [ससमयम्मि] जिन-शासन में [एवं] इस प्रकार (की) [कहामुहं] कथा आरम्भ (का अवकाश) [चेव] ही [णत्थि] नहीं है ।

[जिणोवएसस्मि] जिन (भगवान् के) उपदेश में [अण्णवादो] अन्य भेदवाद (मत) [ण वि] नहीं ही [अत्यि] है [ण वि] नहीं (ही) [तव्वाओ] वह (अभेद) वाद [तं] उसे (भेद या अभद को) [चेव य] ही जो [मण्णंता] मानने वाले (हैं वे) [अमण्णंता] नहीं मानते हुए [ण] (कुछ भी) नहीं [याणंति] जानते हैं ।

भयणा वि हु भइयव्वा जइ भयणा भयइ सव्वदव्वाइं ।
एवं भयणा णियमा वि होइ समयाविरोहेण ॥27॥
णियमेण सद्दहंतो छक्काए भावओ न सद्दहइ ।
हंदी अपज्जवेसु वि सद्दहणा होइ अविभत्ता ॥28॥

अन्वयार्थ : [जह] जिस प्रकार [सव्वदव्वाइं] सब द्रव्यों को (अनेकान्त) [भयणा] विकल्प से [भयइ] भजता है [भयणा वि] भजना भी (अनेकान्त भी) [हु] निश्चय से [भइयव्वा] विकल्पनीय (भजनीय) है [एवं] इस प्रकार [समयाविरोहेण] सिद्धान्त (से) अविरुद्ध [भयणा] विकल्प [णियमो वि] नियम से ही [होइ] होता है ।

[णियमेण]नियम से [छक्काए] छह कायों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति तथा त्रसकाय) की [सहहंतो] श्रद्धा करने वाला (पुरुष) [भावओ] भाव से (मूल वस्तु की दृष्टि से) [ण] नहीं [सदृहइ] श्रद्धान करता है [हंदी] निश्चय (से) [अपज्जवेसु]अपर्यायों में (द्रव्यों में) [वि] भी (ही) [अविभत्ता] अखण्ड [सद्दहणा] श्रद्धान [होइ] होता है ।

गइपरिगयं गई चेव केइ णियमेण दवियमिच्छंति ।
तं पि य उड्ढगईयं तहा गई अन्नहा अगई ॥29॥
गुणणिव्वत्तियसण्णा एवं दहणादओ वि दट्ठव्वा ।
जं तु जहा पडिसिद्धं दव्वमदव्वं तहा होइ ॥30॥
कुंभो ण जीवदवियं जीवो वि ण होइ कुंभदवियं ति ।
तम्हा दो वि अदवियं अण्णोण्णविसेसिया होंति ॥31॥

अन्वयार्थ : [केइ] कोइ (एकान्तावलम्बी) [णियमेण] नियम से [गइ परिणयं] गति (क्रिया में) परिणत [दवियं] द्रव्य को [गई] गति (वाला) [चेव] ही [इच्छंति] मानते हैं [तं पि य] और वह भी [उड्ढगईयं] ऊर्ध्व गति वाला (है) [तहा] तथा (तो) [गई] गति (वाला है) [अण्णहा अगई] अन्यथा अगति (वाला) है।

[एवं] इस प्रकार [गुणणिव्वत्तियसण्णा] गुण (से) सिद्ध संज्ञा (वाले) [दहणादओ] दहन आदि (पदार्थ) [वि] भी [दट्ठव्वा] समझना चाहिए [जं तु] जो तो [जहा] जिस प्रकार से (स) [पडिसिद्धं] निषिद्ध (अपना कार्य नहीं करता है) [दव्वं] द्रव्य (वह) [तहा] वैसे (ही) [अदव्वं] पदार्थ नहीं [होइ] होता है ।

[कुंभो जीवदवियं ण] घड़ा जीव द्रव्य नहीं है [जीवो वि ण होइ कुंभदवियं ति] जीव द्रव्य भी घड़ा नहीं होता [तम्हा] इससे [दो वि] दोनों ही [अण्णोण्णविसेसिया] एक-दूसरे के गुणों से भिन्न (विशिष्ट होने से) [अदवियं] अद्रव्य [होंति] हैं ।

उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससा चेव ।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवायो अपरिसुद्धो ॥32॥

साभाविओ वि समुदयकओ व्व एगंतिओ व्व होज्जाहि ।
आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओऽणियमा ॥33॥
विगमस्स वि एस विही समुदयजणियम्मि सो उ दुवियप्पो ।
समुदयविभागमेत्तं अत्थंतरभावगमणं च ॥34॥

अन्वयार्थ : [उप्पाओ] उत्पाद [दुवियप्पो] दो प्रकार का है [पओगजणिओ] प्रयोगजन्य [य] और [वीससा] विस्रसा (स्वाभाविक) [चेव] ही [तत्य उ] उसमें तो [पओगजणिओ] प्रयत्नजन्य (तो) [समुदयवाओ] समुदायवाद (नाम वाला है और) [अपरिसुद्धो] अपरिशद्ध भी है । [साभाविओ वि] स्वाभाविक (उत्पाद) भी [समुदयकओ व्व] समुदायकृत और [एगंतिओ व्व] ऐकत्विक भी [होज्जाहि] होता (है) [तिण्हं] तीनों [आगासाईआणं] आकाशादिक (घमं, अधर्म और आकाश) [परपच्चओऽणियमा] परप्रत्यय (निमित्त होने से) अनियत हैं । [विगमस्स वि] विनाश की भी [एस विधि] यह पद्धति है [सो समुदयजणियम्मि] वह समुदयजनित में [दुवियप्पो] दो प्रकार (की है) [समुदयविभागमेत्तं] समुदय विभागमात्र [च] और [अत्थंतरभावगमणं] **अर्थ**ान्तरभाव प्राप्ति ।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भिन्न तथा अभिन्न भी

तिण्णि वि उप्पायाई अभिण्णकाला य भिण्णकाला य ।
अत्थंतरं अणत्थंतरं च दवियाहि णायव्वा ॥35॥
जो आउंचणकालो सो चेव पसारियस्स वि ण जुत्तो ।
तेसिं पुण पडिवत्ती-विगमे कालंतरं णत्थि ॥36॥
उप्पज्जमाणकालं उप्पण्णं ति विगयं विगच्छंतं ।
दवियं पण्णवयंतो तिकालविसयं विसेसेइ ॥37॥

अन्वयार्थ : [तिण्णि वि] तीनों हि [उप्पायाई] उत्पाद आदि (उत्पाद, व्यय और धौव्य इन तीनों का) [अभिण्णकाला] अभिन्न काल (एक समय) [य] और [भिण्णकाला य] भिन्न (भिन्न) समय (भी किसी अपेक्षा कहा गया है) [दवियाहि] द्रव्यों से (अपने आश्रयभूत द्रव्यों मे) [अत्थंतर] अर्थान्तर (भिन्न पर्याय वाले हैं) [च] और [अणत्थंतरं] अभिन्न पर्याय (वाले) [णायव्वा] समझना चाहिए ।
[जो] जो [आउंचणकालो] संकोचन (का) समय (है) [सो] वह [चेव] ही [पसारियस्स वि] पसारने का (फैलाव का समय) भी है [ण जूत्तो] उपयुक्त नहीं (यह मान्यता युक्तियुक्त नहीं है) [पुण] फिर (यह कहना कि) [तेसिं] उन दोनों के (आकुंचन तथा प्रसारण के) [पडिवत्तीविगमे] उत्पत्ति (और) विनाश में [कालंतरं णत्थि] समय (का) अन्तर नहीं है ।
[उप्पज्जमाणकालं] उत्पन्न होते समय [उत्पण्णं] उत्पन्न (हुआ है) [विगच्छंतं] नष्ट होते (समय) [विगयं] नष्ट [ति] यह (इस प्रकार) [पण्णवयंतो] प्ररूपणा करता हुआ [दवियं] द्रव्य को [तिकालविसयं] त्रिकाल विषयक (त्रैकालिक) [विसेसेइ] विशेषित करता है ।
दव्वंतरसंजोगाहि केचि दवियस्स बेंति उप्पायं ।
उप्पायत्थाऽकुसला विभागजायं ण इच्छंति ॥38॥
अणु दुअणुएहिं दव्वे आरद्धे 'तिअणुयं' ति ववएसो ।
तत्तो य पुण विभत्तो अणु त्ति जाओ आणू होइ ॥39॥
बहुयाण एगसद्दे जह संजोगाहि होइ उप्पाओ ।
णणु एगविभागम्मि वि जुज्जइ बहुयाण उप्पाओ ॥40॥
एगसमयम्मि एगदवियस्स बहुया वि होंति उप्पाया ।
उप्पायसमा विगमा ठिईउ उस्सग्गओ णियमा ॥41॥ काय-मण-वयण-किरिया-रूवाइ-गईविसेसओ वावि ।
संजोयभेयओ जाणणा य दवियस्स उप्पाओ ॥42॥

अन्वयार्थ : [उप्पायत्थाऽकुसला] उत्पाद (शब्द) के अर्थ से [अकुसला] अनभिज्ञ [के वि] भी कुछ (लोग) [दव्वंतरसंजोगाहि] द्रव्यान्तर के संयोगों से [दवियस्स] द्रव्य की [उप्पायं बेंति] उत्पत्ति कहते हैं [विभागजायं] विभाग से द्रव्य उत्पन्न होता है, ऐसा [ण इच्छंति] नहीं मानते (हैं) ।

[दुअणुएहिं] दो आदि अणुओं से [आरद्धे अणु] द्रव्य में द्वयणु [तिअणुयं] त्र्यणुक [ति] यह (ऐसा) [ववएसो] व्यवहार होता है [तत्तो] इस कारण [पुण] फिर [विभत्तो] विभक्त हुआ (त्र्यणुक से) [अणु जाओ] अणु होने पर [अणु] अणु (ऐसा) [ववएसो होइ] व्यवहार होता है।
[बहुयाण] बहुतों में [एगसद्दे] एक शब्द (का प्रयोग होने) पर [जह] जिस प्रकार [संजोगाहि] संयोगों से [उप्पाओ होइ] उत्पत्ति होती है [णणु] निश्चय से [एगविभागम्मि] एक का विभाग होने पर [बहुयाण वि] बहुतों की भी [उप्पाओ जुज्जइ] उत्पत्ति बन जाती है।
[एगदवियस्स] एक द्रव्य की [एगसमयम्मि] एक समय में [बहुया वि] बहुत भी [उप्पाया होंति] उत्पत्ति होती है और [उप्पायसमा] उत्पत्ति के समान [विगमा ठिईउ] विनाश स्थिति भी [णियमा] नियम से है।
[कायमणवयणकिरिया] शरीर, मन, वचन, क्रिया, [रूवाइगई] रूप आदि, गति [विसेसओ] विशेष से [वावि] भी [संजोगभेयओ] संयोग और विभाग से [दवियस्स] द्रव्य का [उप्पाओ जाणणा] उत्पाद जानना चाहिए।

धर्मवाद

दुविहो धम्मावाओ अहेउवाओ य हेउवाओ य।
तत्थ उ अहेउवाओ भवियाऽभवियादओ भावा ॥43॥
भविओ सम्मद्दंसण-णाण-चरित्तपडिवत्तिसंपन्नो।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स ॥44॥
जो हेउवायपक्खम्मि हेउओ आगमे य आगमिओ।
सो ससमयपण्णवओ सिद्धंतविराहओ अन्नो ॥45॥

अन्वयार्थ : [धम्मावाओ] धर्मवाद [दुविहो] दो प्रकार का है [अहेउवाओ] अहेतुवाद [य] और [हेउवाओ] हेतुवाद [य] और [तत्थ] उसमें [अहेउवाओ] हेतुवाद (के विषय) [उ] तो [भवियाऽभवियादओ] भव्य-अभव्य (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय) आदि [भावा] पदार्थ हैं।
[सम्मद्दंसणणाणचरित्त] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की [पडिवत्ति संपन्नो] प्राप्ति से युक्त (जीव) [भविओ] भव्य है [णियमा] नियम से वह [दुक्खंतकडो] दु:खों का अन्त करने वाला होगा [त्ति] यह [हेउवायस्स] हेतुवाद का [लक्खणं] लक्षण है।
जो जो (पुरुष) [हेउवायपक्खम्मि] हेतुवाद के पक्ष में [हेउओ] हेतु का [आगमे य] और आगम में [आगमिओ] आगम का प्रयोग करता है [सो] वह [ससमयपण्णवओ] स्व समय का प्ररूपक है [अण्णो] अन्य (इससे भिन्न) [सिद्धंतविराहओ] सिद्धान्त विराधक है।

शुद्ध नयवाद

परिसुद्धो नयवाओ आगममेत्तत्थसाहओ होइ।
सो चेव दुण्णिगिण्णो दोण्णि वि पक्खे विधम्मेइ ॥46॥
जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया।
जावइया णयवाया तावइया चेव परसमया ॥47॥
जं काविलं दरिसणं एवं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं।
सुद्धोअणतणअस्स उ परिसुद्धो पज्जवविअप्पो ॥48॥
दोहि वि णएहि णीअं सत्थमुलूएण तह वि मिच्छत्तं।
जं सविसअप्पहाणतणेण अण्णोण्णणिरवेक्खा ॥49॥

अन्वयार्थ : [आगममेत्तत्थसाहओ] आगम मात्र अर्थ (कंबल श्रुत कथित विषय) का साधक [परिसुद्धो] परिशुद्ध [णयवाओ] नयवाद [होइ] होता है [सो] वह [चेव] ही और (जब) [दुण्णिगिण्णो] दुर्निक्षिप्त (परस्पर निरपेक्ष रखा जाता है, तब) [दोण्णि वि] दोनों ही [पक्खे] पक्ष में (का) [विधम्मेइ] विनाशक होता है।
[जावइया] जितने भी [वयणवहा] वचन] पथ (प्रकार हैं) [तावइया] उतने [चेव] ही [णयवाया] नयवाद [होंति] होते है (और) [जावइया] जितने [णयवाया] नयवाद हैं [तावइया] उतने [चेव] ही [परसमया] अन्य मत (है)।
[जं] जो [काविलं दरिसणं] सांख्य दर्शन है वह [एयं] यह (इस) [दव्वट्ठियस्स] द्रवयार्थिक नय का [वत्तव्वं] वक्तव्य है

[सुद्धोअणतणअस्स उ] किन्तु गौतम बुद्ध का (सिद्धान्त) [परिसुद्धो] विल्कुल शुद्ध [पज्जवविअप्पो] पर्यायार्थिक नय का विकल्प है । [दोहि वि] दोनों ही [णयेहि] नयों से [उलुएण] कणाद ने (के द्वारा) [सत्थम्] शास्त्र (वैशेषिक दर्शन की) [णीयं] रचना की [तह वि] तो भी [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व (विपरीत, अप्रमाण) है [जं] जो (ये दोनों नय) [सविसअप्पहाणतणेण] अपने विषय (की) प्रधानता से [अण्णोण्णणिरवेक्खा] परस्पर निरपेक्ष हैं ।

वे सभी सदोष

जे संतवायदोसे सक्कोलूया भणंति संखाणं ।
संखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा ॥50॥
ते उ भयणोवणीया सम्मद्दंसणमणुत्तरं होंति ।
जं भवदुक्खविमोक्खं दो वि न पूरेंति पाडिक्कं ॥51॥
नत्थि पुढविविसिट्टो 'घडो' त्ति जं तेण जुज्जइ अणण्णो ।
जं पुण 'घडो' त्ति पुव्वं ण आसि पुढवी तओ अण्णो ॥52॥

अन्वयार्थ : [सक्कोलूया] बौद्ध एवं वैशेषिक [जे] जिन [संतवायदोसे] सत् (कार्य) वादी दोषों को [संखाणं] सांख्य के (सिद्धान्त पर) [भणंति] कहते हैं [तेसिं] उनके [य] और [संखा] सांख्य [असव्वाए] असद्वाद (पक्ष) में (दोष प्रकट करते हैं) [ते] वे [सव्वे वि] सभी (दोष) [सच्चा] सच्चे हैं ।

[ते] वे दोनों (सत्वाद, असत्वाद) [भयणोवणीया] विभाग (किए जाने पर) [अणुत्तरं] सर्वोत्तम [सम्मद्दंसणम्] सम्यग्दर्शन [होंति] होते हैं [जं] जो (वह) [पाडिक्कं] प्रत्येक [दो वि] दोनों ही [भवदुक्खविमोक्खं] संसार के दुःख से मुक्ति [ण पूरेंति] दिला सकते हैं ।

[घडो त्ति] यह घड़ा [पुढवीविसिट्ठो] पृथ्वी से विशिष्ट (भिन्न) [णत्थि] नहीं है [जं] जो [तेण] उससे [अणण्णो] अभिन्न [जुज्जइ] युक्त होता है [जं पुण] जो पुन: [त्ति] यह (पृथ्वी) [पुव्वं घड़ो ण] पहले घड़ा नहीं [आसि] थी [तओ] इसलिए [पुढवी] पृथ्वी से [अण्णो] भिन्न है ।

कार्य की उत्पत्ति स्व-कारण से

कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिसकारणेगंता ।
मिच्छत्तं ते चेवा (व) समासओ होंति सम्मत्तं ॥53॥

अन्वयार्थ : [कालो] काल [सहाव] स्वभाव [णियई] नियत्ति [पुव्वकयं] पूर्वकृत (अदृष्ट) [पुरिस] पुरुष (रूप) [कारणेगंता] कारण (विषयक) एकान्त (वाद) [मिच्छत्त] मिथ्यात्व हैं [ते चेव] वे ही [समासओ] समस्त (समग्र रूप में, सापक्ष रूप से मिलने पर) [सम्मत्तं] सम्यक् [होंति] होते है ।

अनात्मवादी और आत्मवादी

णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ कयं ण वेएइ णत्थि णिव्वाणं ।
णत्थि य मोक्खोवाओ छ म्मिच्छत्तस्स ठाणाइं ॥54॥
अत्थि अविणासधम्मी करेइ वेएइ अत्थि णिव्वाणं ।
अत्थि य मोक्खोवाओ छ स्सम्मत्तस्स ठाणाइं ॥55॥

अन्वयार्थ : (आत्मा) [णत्थि] नहीं है [णिच्चो ण] नित्य नहीं है [कुणइ] कर्ता (कुछ भी) [कयं] कार्य [ण] नहीं करता [ण] नहीं [वेएइ] फल भोगता है [णिव्वाणं णत्थि] निर्वाण (मुक्ति) नहीं है [य] और [मोक्खोवाओ णत्थि] मोक्ष का उपाय नहीं है [छम्मिच्छत्तस्स] मिथ्यात्व के ये छह [ठाणाईं] स्थान हैं ।

(आत्मा) [अत्थि] है [अविणासधम्मी] अविनाशी स्वभाव (वाला है) [करेइ] कर्ता (शुभ-अशुभ कर्मों का) है [वेएइ] भोगता है [णिव्वाण] निर्वाण (मुक्ति) है, और [मोक्खोवाओ] मोक्ष का उपाय है [छ स्सम्मत्तस्स] सम्यक्त्व के (ये) छह [ठाणाइं] स्थान हैं ।

अनेकान्त-दृष्टि के अभाव में

साहम्मउ व्व अत्थं साहेज्ज परो विहम्मओ वा वि ।

अण्णोणं पडिकुट्ठा दोण्णवि एए असव्वाया ॥56॥

दव्वट्ठियवत्तव्वं सामण्णं पज्जवस्स य विसेसो ।

एए समोवणीआ विभज्जवायं विसेसेंति ॥57॥

हेउविसओवणीअं जह वयणिज्जं परो नियत्तेइ ।

जइ तं तहा पुरिल्लो दाइंतो केण जिव्वंतो ॥58॥

एयंताऽसब्भूयं सब्भूयमणिच्छियं च वयमांणो ।

लोइय-परिच्छियाणं वयणिज्जपहं पडइ वादी ॥59॥

अन्वयार्थ : [परो] पर (एकान्तवादी) [साहम्मऊ] साधम्य से [व्व] अथवा [विहम्मओ] वैधर्म्य से [वा वि] भी [अत्थ] अर्थ (साध्य) [साहेज्ज] साधे [एए] ये [दोण्णि वि] दोनों ही [अण्णोण्णं] परस्पर [पडिकुट्ठा] प्रतिषिद्ध (प्रतिकूल) [असव्वाया] असद्वाद हैं ।
[दव्वट्ठियवत्तव्वं] द्रव्यार्थिक (नय) का वक्तव्य [सामण्णं] सामान्य (है) य] और [पज्जवस्स] पर्यायाथिक (नय) का (वक्तव्य) [विसेसो] विशेष है [समोवणीया] प्रस्तुत [एए] ये दोनों (सापेक्ष रूप से) [विभज्जवायं] अनेकान्तवाद को [विसेसेंति] विशिष्ट बनाते हैं (रचते हैं)।
[हेउविसओवणीयं] हेतु (के) विषय (रूप में) प्रस्तुत [वयणिज्जं] वचन योग्य (विषय को) [जह] जिस प्रकार [परो] प्रतिवादी [णियत्तेइ] निवारण करता है [जइ] यदि [पुरिल्लो] पूर्ववर्ती (वादी नें) [तं] उस (साध्य) को [तहा] उसी प्रकार (हेतुपूर्वक) [दाइंतो] दिखलाए तो [केण] किसके द्वारा [जिव्वंतो] जीता (जा सकता है) ?
[एयंताऽसब्भूयं] एकान्त असद्भूत का (अथवा) [सब्भूयमणिच्छियं] सद्भूत (होने पर भी) अनिश्चित [वयमाणो] बोलने वाला [वादी] वादी [लोइयपरिच्छियाणं] लौकिक (तथा) परीक्षकों के [वयणिज्जपहं] वचन पथ को [पडइ] प्राप्त होता है (निन्दा का पात्र बन जाता है) ।

पदार्थ के प्रतिपादन का क्रम

दव्वं खेत्तं कालं भावं पज्जाय-देस-संजोगे ।

भेदं च पडुच्च समा भावाणं पण्णवणपज्जा ॥60॥

अन्वयार्थ : [दव्वं] द्रव्य [खेत्तं] क्षेत्र [कालं] काल [भाव] भाव [पज्जाय देससंजोगे] पर्याय देश संयोग [च] और [भेदं] भेद का [पडुच्च] आश्रय कर [भावाणं] पदार्थों की [पण्णवणपज्जा] प्रतिपादन (की) परिपाटी [समा] सम्यक् है ।

अनेकान्ती ही भावस्पर्शी

पाडेक्कनयपहगयं सुत्तं सुत्तहरसद्दसंतुट्ठा ।

अविकोवियसामत्था जहागमविभत्तपडिवत्ती ॥61॥

सम्मद्दंसणमिणमो सयलसमत्तवयणिज्जणिद्दोसं ।

अत्तुक्कोसविणट्ठा सलाहमाणा विणासेंति ॥62॥

अन्वयार्थ : [पाडेक्कणयपहगयं] प्रत्येक नय मार्गगत [सुत्त] सूत्र अथवा [सुत्तहरसद्दसंतुट्ठा] सूत्रधर के शब्द से सन्तुष्ट हो जाते हैं [अविकोवियसामत्था] निश्चय से विद्वता के सामर्थ्य को [जहागमविभत्तपडिवत्ती] आगम से भिन्न प्राप्त करते हैं ।
[सलाहमाणा] (अपनी) प्रशंसा के पुल बाँधने वाले [अत्तुक्कोसविणट्ठा] आत्मोत्कर्ष (से) नष्ट (हो कर) [सयलसमत्तवयणिज्जणिद्दोसं] सम्पूर्ण सिद्ध निर्दोष वक्तव्य वाले [सम्मद्दंसणमिणमो] इस सम्यग्दर्शन को [विणासेंति] नष्ट कर देते हैं ।

भक्ति या जानकारी मात्र से ज्ञानी नहीं

ण हु सासणभत्तीमत्तएण सिद्धंतजाणओ होइ ।

ण वि जाणओ वि णियमा पण्णवणाणिच्छिओ णामं ॥63॥

अन्वयार्थ : [सासणभत्तीमेत्तएण] शासन-भक्ति मात्र से (कोई व्यक्ति) [सिद्धतंजाणओ] सिद्धान्त का ज्ञाता [ण हु] नहीं ही [होइ] होता; [जाणओ वि] जानकार (होने पर) भी [णियमा] नियम से [पण्णवणाणिच्छिओ] प्ररूपणा के योग्य निश्चित [णामं] नाम वाला [ण वि] नहीं ही होता है ।

अर्थ-ज्ञान दुर्लभ है

सुत्तं अत्थनिमेणं न सुत्तमेत्तेण अत्थपडिवत्ती ।
अत्थगई उण णयवायगहणलीणा दुरभिगम्मा ॥64॥
तम्हा अहिगयसुत्तेण अत्थसंपायणम्मि जइयव्वं ।
आयरियधीरहत्था हंदि महाणं विलंवेन्ति ॥65॥

अन्वयार्थ : [सुत्तं अत्थनिमेणं] सूत्र अर्थ का स्थान है (किन्तु) [सुत्तमेत्तेण] सूत्र (जान लेने) मात्र से [ण अत्थपडिवत्ती] अर्थ (का) ज्ञान नहीं होता है [णयवायगहणलीणा] नयवाद पर गहन निर्भर होने [अत्थगई उण] पर (भी) अर्थ-ज्ञान [दुरभिगम्मा] दुर्बोध्य है ।
[तम्हा] इसलिए [अहिगयसुत्तेण] सूत्र जान लेने (पर) से [अत्थसंपायणम्मि] **अर्थ** (के) सम्पादन में [जइयव्वं] प्रयत्न करना चाहिए [हंदि] यह समझें कि [आयरियघीरहत्था] अनुभवहीन आचार्य [महाणं] जिनागम (जिनवाणी की) [विलंबेंति] विडम्बना करते हैं ।

ज्ञान-विहीन पर-समय

जह जह बहुस्सुओ सम्मओ य सिस्सगणसंपरिवुडो य ।
अविणिच्छिओ य समए तह तह सिद्वंतपडिणीओ ॥66॥
चरणकरणप्पहाणा ससमय-परसमयमुक्कवावारा ।
चरण-करणस्स सारं णिच्छयसुद्ध ण याणंति ॥67॥

अन्वयार्थ : [समये] सिद्धान्त में [अविणिच्छिओ] अनिश्चित (बुद्धि वाला कोई आाचार्य) [जह जह] जैसे-जैसे [बहुस्सुओ] बहुश्रुत (पण्डित) [सम्मगो] माना जाता है [य] और [सिस्सगणसंपरिवुडो] शिष्यवृन्द से घिरता जाता है [तह तह] वैसे-वैसे [सिद्धंतपडिणीओ] सिद्धान्त के प्रतिकूल होता जाता है ।
[चरण-करणप्पहाणा] (बाह्य) आचरण की क्रियाओं को मुख्य (समझने वाले) [ससमय-परसमयमुक्कवावारा] स्व-समय (और) पर-समय के व्यापार (चिन्तन) से मुक्त [चरण-करणस्स] आचरण परिणाम का [सारं] सार [णिच्छयसुद्ध ण याणंति] निश्चय-शुद्ध (आत्मा) को नहीं जानते हैं ।

णाणं किरियारहियं किरियामेत्तं च दो वि एगंता ।
असमत्था दाएउं जम्ममरणदुक्ख मा भाई ॥68॥

अन्वयार्थ : [किरियारहियं णाण] चारित्र विहीन ज्ञान [च] और [किरियामेत्तं] (ज्ञान शून्य) मात्र क्रिया [दो वि] दोनों ही [एगंता] एकान्त है; [जम्ममरणदुक्ख] जन्म-मरण के दुःखों से [मा] मत [भाई] डरो; (परस्पर साथ रह कर ज्ञान और चारित्र) [दाएउ] (जन्म मरण दु:ख) दिलाने में [असमत्था] असमर्थ हैं ।

जेज विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥६९॥
भद्दं मिच्छादंसण समूहमहयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥७०॥

अन्वयार्थ : [जेण विणा] जिसके बिना [लोगस्स] लोक का [ववहारो] व्यवहार [वि] भी [सव्वहा] सर्वथा [ण] नहीं [णिव्वडइ] निष्पन्न होता है [तस्स] उस [भुवणेक्कगुरुणो] तीन लोक के अद्वितीय गुरु [अणेगंतवायस्स] अनेकान्तवाद को [णमो] नमस्कार है।
[मिच्छादंसण] मिथ्यादर्शन (मिथ्यामत वाले) [समूह] समुदाय (वर्ग) का [महयस्स] विनाश करने वाले [अमय सारस्स] अमृत सार (रूप) [संविग्ग] ममुक्षु के [सूहाहिगम्मस्स] सुख पूर्वक समझ में आने वाले [भगवओ] भगवान के [जिणवयणस्स] जिन वचन के [भद्द] कल्याण

हो ।